प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

सितम्बर, 2017

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110 012

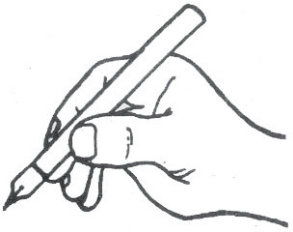

सम्पादकीय

किसान भाइयो को नमस्कार एवं दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएँ। मौसम बदल रहा है, और ठंड का आगमन हो गया है। सही मायनों में खुशनुमा मौसम दीपावली के आस-पास ही होता है। यहाँ दीपावली का त्यौहार मौसम में बदलाव का संदेश लेकर आता है। दिल्ली एवं आस-पास के इलाकों में जहाँ ठंड राहत देती है, वहीं हवा का प्रदूषण बढ़ने लगता है। ठंड की वजह से हवा में धुएँ और धूल के कण भारी हो जाते हैं और धरातल के निकट आ जाते हैं। इस मौसम में ये कण साँसों के माध्यम से फेफड़ों, आंखों को सीधे प्रभावित करने लगते हैं। दीपावली का संबंध जहाँ हर्ष और उल्लास से है, वहीं राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, पंजाब, हरियाणा सहित समूचे उत्तरी भारत में प्रदूषण से भी है, क्योंकि इस दौरान प्रदूषणकारी तीन शक्तियाँ इकट्ठा हो जाती हैं और एक साथ मिलकर धावा बोलती हैं। पहला, इन इलाकों में कल-कारखानों और मोटर वाहनों से निकले धुएँ के कारण होने वाला प्रदूषण है। दूसरा, दीपावली में पटाखों, आतिशबाजियों को जलाने से निकलने वाले जहरीले धुएँ का प्रदूषण होता है। तीसरा, जो किसान भाइयों से सीधा संबंध रखता है, कि इन इलाकों में खेतों में बची पुआल, जो कंबाइन से धान कटाई के बाद बच जाती है, में आग लगाने की कुप्रथा भी है। हम सब जानते हैं कि साफ हवा हमारे जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। आप सब को मालूम होगा कि इस वर्ष दीपावली के दौरान दिल्ली में पटाखों का व्यापार गैरकानूनी घोषित किया गया था। खेतों में पुआल जलाना भी गैरकानूनी है। साथियो, प्रदूषण एक ऐसा दानव है जो किसी को नहीं बख्शता। तो क्या कारण है कि जान-बूझकर हम हवा को जहरीला बनाने में अपना योगदान देते हैं?

दरअसल हम साझे की चीज़ की कद्र नहीं करते। हमारा जिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार केवल व्यक्तिगत चीजों तक सीमित रहता है। हमारे लिए केवल मैं, मेरा घर, मेरा शरीर या मेरा परिवार महत्वपूर्ण है, समाज नहीं। समाजिक या सार्वजनिक चीजों के प्रति हम गैरजिम्मेदारीपूर्ण बर्ताव करते हैं। हममें सामाजिक समझ का अभाव है। किसी ने कहा है, मुक्ति कभी अकेले की नहीं होती। इसी प्रकार तरक्की कभी अकेले की नहीं हो सकती, समूचे समाज की होती है। हमें समझना होगा कि हवा यदि जहरीली होगी, तो हम इससे अछूते नहीं रह सकते। हम भी इसके शिकार होंगे। सामाजिक जिम्मेदारी या चेतना का अभाव हमें पर्यावरण, भूमि, जल, सड़क और प्राकृतिक संसाधनों के दुरूपयोग को बढ़ावा देता है और इसमें होने वाली हानि के प्रति उदासीन बनाता है।

सामाजिक चेतना, एक ऐसा मूलमंत्र है, जिसमें हमारी तमाम समस्याओं का हल छिपा है। हमें व्यक्तिगत स्तर से उठकर सामाजिक स्तर पर सोचना होगा, तभी हम प्रगति कर सकते हैं और हमारा देश आगे बढ़ सकता है। जापान में स्वच्छता इसलिए है क्योंकि वहाँ का नागरिक न केवल घर में, अपितु सड़क और सार्वजनिक स्थानों पर स्वच्छता के नियम का पालन करता है।

यह बात केवल हवा के प्रदूषण पर लागू नहीं होती, अपितु प्रत्येक क्षेत्र पर लागू होती है। कीट और रोगनाशक दवाओं के अंधाधुंध प्रयोग के कारण बाजार में आने वाले, अनाज, सब्जियां, फल सभी जहरीले हो गए हैं। ज्यादा उपज के लालच में बेतहाशा रासायनिक उर्वरकों ने पानी को भी जहरीला बना दिया है। हवा, पानी, मिट्टी, भोजन

यह सब इतने विषाक्त हो रहे हैं, कि मनुष्य की आयु और कार्यक्षमता, दोनों घट रही है। बीमारियाँ लाइलाज होती जा रही हैं। पहले जिन गंभीर बीमारियों के नाम इक्का दुक्का सुनाई पड़ते थे, अब वे आमतौर पर होने लगी हैं।

अब समय आ गया है कि हम गंभीरता से इस समस्या पर विचार करें। इससे पहले कि वक्त हाथ से निकल जाए, हमें एकजुट होना होगा। विकास के साइड इफैक्ट के रूप में प्रदूषण और जहर का सेवन आज हमारी मजबूरी नहीं है। वैज्ञानिक तकनीकी इतनी उन्नत हो गई है कि संपोषणीय विकास या टिकाउ विकास एक कल्पना नहीं, बल्कि वास्तव में संभव है। इसके अंतर्गत ऐसे विकास पर जोर दिया जाता है कि उत्पादन तो हो, पर संसाधनों का क्षरण न हो, और वे आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रहें। तो सवाल यह उठता है कि हम किसान भाई ऐसी खेती कैसे करें जो समाज के लिए सुरक्षित हो? प्रदूषण घटाने में अपना योगदान कैसे दे सकते हैं?

हमें केवल यह ध्यान देना है कि खेती में जो इनपुट लगाएँ, वह आवश्यकता से अधिक न हों। जैसे खाद और उर्वरक का उपयोग मिट्टी की जांच और आगामी फसल की आवश्यकता के अनुसार करें। कीड़ों और रोगों की सही पहचान करें, और तभी उसके अनुसार अनुशंसित दवाओं का प्रयोग करें। यहाँ तक कि पानी भी तभी दें, जब पौधे को सचमुच पानी की जरूरत हो। अनावश्यक तौर पर दिया गया पानी भी खेती के लिए नुकसानदेह होता है। कभी भी समस्या पड़ने पर सहायता और सलाह मांगने में कतई संकोच न करें। साथियों, मोबाइल के रूप में हमारे हाथ में ऐसा करामाती यंत्र आया है जिसका सही उपयोग करके हम अपनी खेती को आधुनिक और सुरक्षित बना सकते हैं। इनके साथ यह न भूलें कि सामूहिकता की भावना जीवन के हर क्षेत्र में आवश्यक है, संगठन में बड़ी शक्ति होती है।

प्रस्तुत अंक में समसामयिक समस्याओं को ध्यान में रखकर लेख शामिल किए गए हैं। किसान भाइयों के लिए प्रेरणा के लिए सफलता की कहानी दी गई है। रबी के मौसम में उगाई जाने वाली फसलों, जैसे गेहूं, सरसों, चने, आलू की खेती और आलू के शीत भंडारण के साथ ग्लैडियोलस, जरबेरा की खेती और टमाटर के प्रसंस्करण पर भी आलेख शामिल किए गए हैं। समय की मांग को देखते हुए कृषि मशीनरी की कस्टम हायरिंग, यंत्रों की देखभाल और रखरखाव, जल प्रबंधन के आधुनिक तरीकों पर भी आलेख शामिल किए गए हैं। उम्मीद है किसान भाइयों को यह अंक पसंद आएगा। कृपया अपनी प्रतिक्रिया और सुझाव भेजें ताकि हम आगामी अंकों में सुधार कर सकें।

संपादक

सितम्बर 2017

प्रसार दूत

वर्ष 22 | 2017 | अंक-3

संरक्षक
डॉ. ए.के. सिंह
कार्यवाहक निदेशक
डॉ. जे.पी. शर्मा
संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक
डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक
डॉ. एन.वी. कुंभारे

संपादक मंडल
डॉ. कन्हैया सिंह
डॉ. आर.एस. बाना
डॉ. नफीस अहमद
डॉ. हरीश कुमार
श्री के.एस. यादव

तकनीकी सहयोग
श्रीमती करूणा दिक्षित
डॉ. वी.एस. सोलंकी
श्री आनन्द विजय दुबे
श्री सुरेन्द्र पाल
श्री राजेश कुमार

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता
प्रभारी अधिकारी
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली - 110012
फोन: 011-25841670
एग्रीकॉम: 1800118989 (टोल फ्री)
ई-मेल: incharge_atic@iari.res.in

विषय सूची **पृष्ठ संख्या**

सम्पादकीय

1. सिंचित भूमि में समय से बुवाई की परिस्थितियों में अधिक उत्पादन के लिए गेहूँ की नवीनतम किस्में **1**
2. सरसों फसल का मूल आधार-उन्नत बीज **6**
3. ग्लैडियोलस की उन्नत शस्य तकनीकें **16**
4. दलहनी फसलों में उर्वरकों का प्रयोग **20**
5. टमाटर का मूल्य संवर्धन **22**
6. पॉलीहाउस में जरबैरा की खेती **27**
7. आलू की फसल के रोग एवं प्रबंधन **30**
8. कृषक नेतृत नवाचार एवं कृषि प्रौद्योगिकियों के प्रसार हेतु एक नवीन दृष्टिकोण **35**
9. खेत उपकरणों का कस्टम हायरिंग मॉडल **38**
10. आलू का शीत भण्डारण - आंकड़ों का विश्लेषण **42**
11. बरसात के मौसम में आधुनिक कृषि यंत्रों का रख-रखाव **45**
12. जल संरक्षण **47**
13. एक किसान की सफलता की कहानी **51**

वार्षिक शुल्क ₹ 80/- मनीआर्डर द्वारा **एक प्रति मूल्य ₹ 20/-**

सिंचित भूमि में समय से बुवाई की परिस्थितियों में अधिक उत्पादन के लिए गेहूँ की नवीनतम किस्में

राम कुमार शर्मा, अम्बरीश कुमार शर्मा, नरेश कुमार, युगल किशोर काला, अत्तर सिंह एवं कमल किशोर यादव

आनुवंशिकी संभाग, भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

हरित क्रांति की सफलता एवं कृषकों के अथक परिश्रम के फलस्वरूप देश गेहूँ उत्पादन में नये आयाम स्थापित कर रहा है। चीन के बाद हमारा देश विश्व में दूसरा सबसे बड़ा गेहूँ उत्पादक देश है। वर्तमान वर्ष (2015-16) में गेहूँ की खेती 302.3 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है तथा उत्पादन 930.5 लाख टन एवं उत्पादकता स्तर 30.12 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है। देश की जनसंख्या में उत्तरोतर वृद्धि को देखते हुए ऐसा अनुमान लगाया गया है कि अन्न की मांग प्रतिवर्ष दो प्रतिशत बढ़ेगी। इस बढ़ती मांग को पूरा करने हेतु उत्पादकता स्तर में वृद्धि करना आवश्यक है क्योंकि क्षेत्रफल में वृद्धि को संभावना नगण्य है।

अधिक उत्पादकता के लिए अनुमोदित नवीनतम प्रजातियों का महत्व

अधिक उत्पादकता प्राप्त करने के अनुमोदित नवीनतम प्रजातियों का चयन महत्वपूर्ण है। नवीनतम प्रजातियाँ आनुवंशिक रूप से न केवल अधिक उत्पादन देने में सक्षम होती हैं बल्कि प्रचलित रोगों के प्रति रोगरोधिता एवं बदलती जलवायु के प्रभाव को सहने में सक्षम होने का गुण भी इनमें होता है। इसलिए आवश्यक है कि अधिक उत्पादन हेतु कृषक अपने क्षेत्र एवम् परिस्थिति अनुसार गेहूँ की नवीनतम एवं अनुमोदित किस्मों के प्रमाणित बीजों को अपनायें।

गेहूँ उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र

भारतवर्ष की भौगोलिक परिस्थितियों, मृदा, जलवायु एवं रोगों की विविधता को ध्यान में रखते हुए देश भर को गेहूँ उत्पादन के 6 प्रमुख प्रक्षेत्रों, में बांटा गया है। इनमें से चार प्रक्षेत्र मैदानी में तथा दो पर्वतीय क्षेत्रों में हैं। नवीन किस्मों का विकास एवम् विमोचन किसी विशेष प्रक्षेत्र के लिए किया जाता है। ये किस्में उसी प्रक्षेत्र या जोन में पाये जाने वाली मिट्टी, पानी तथा जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल होती है। अतः उपयुक्त किस्म चुनने के लिए इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है। गेहूँ की खेती का अधिकांश क्षेत्रफल मैदानी क्षेत्रों में आता है। इन जोनों का विवरण निम्न प्रकार से है:

1. उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र

देश के कुल गेहूँ उत्पादक क्षेत्र का लगभग 35 प्रतिशत क्षेत्र तथा उत्पादन की दृष्टि से 40-45 प्रतिशत का योगदान देने वाली यह जोन उत्पादकता की दृष्टि से सर्वोपरि है। जल संसाधन की दृष्टि से यह क्षेत्र काफी धनी है। गेहूँ की फसल पकने में 140-150 दिन का समय लेती है। भूरा व पीला रतुआ रोग, कण्डुआ एवं करनाल बंट इस जोन में लगने वाले मुख्य रोग है। बालियों के पकने के समय गर्म हवाओं के कारण दाने सिकुड़ने के समस्या भी कुछ समय से दृष्टिगत हो रही है। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश (झांसी

संभाग को छोड़कर), राजस्थान (कोटा व उदयपुर संभाग को छोड़कर), जम्मू कश्मीर के जम्मू एवं कठुआ संभाग, हिमाचल प्रदेश की ऊना एवं पौटां घाटी एवं उत्तराखंड के तराई क्षेत्र इस जोन में आते हैं।

2. उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्र

पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, ओडिशा, पश्चिम बंगाल एवं पूर्वोत्तर राज्यों के मैदानी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाली यह जोन, देश के कुल गेहूँ क्षेत्रफल एवं उत्पादन में लगभग 30 प्रतिशत का योगदान देती है। सर्दी अथवा कम तापमान की अवधि कम होने के कारण गेहूँ की फसल लगभग 125 दिन में तैयार हो जाती है। उत्तर पूर्वी भारत में धान-गेहूँ एक प्रमुख फसल चक्र है तथा अक्सर गेहूँ की बुवाई में देरी हो जाती है एवं गर्म हवाओं के चलने से दाने सिकुड़ जाते हैं। भूरा रतुआ एवं झुलसा रोग इस क्षेत्र में प्रमुख हैं।

3. मध्य क्षेत्र

उच्च गुणवत्ता वाले गेहूँ उत्पादन के लिए जानी जाने वाली यह जोन, देश के कुल गेहूँ क्षेत्रफल में 20 प्रतिशत तथा उत्पादन में 15 प्रतिशत का योगदान देती है। पानी की उपलब्धता इस क्षेत्र की प्रमुख समस्या है अधिक तापमान के कारण फसल 120 दिन में पककर तैयार हो जाती है। भूरे एवं काला रतुआ रोग, जड़ विगलन एवं फसल की ज्यादातर अवधि में अधिक तापमान का होना मुख्य समस्याएं हैं। इन जोन के अंतर्गत मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान का कोटा उदयपुर सभाग और उत्तर प्रदेश का झांसी संभाग क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र में ड्यूरम गेहूँ की खेती की जाती है।

4. प्रायद्वीपीय क्षेत्र

महाराष्ट्र, कर्नाटक, गोवा, आंध्र प्रदेश एवं तमिलनाडू के मैदानी क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाली इस जोन में चपाती, मैक्रोनी डयूरम गेहूँ के अलावा डाईकॉकम गेहूँ का उत्पादन भी किया जाता है। देश के कुल गेहूँ उत्पादक क्षेत्रफल का 5 प्रतिशत एवं उत्पादन में लगभग 2 प्रतिशत का योगदान देने वाली इस जोन में फसल 105-110 दिन में पककर तैयार हो जाती है। जोन में पानी की उपलब्धता की समस्या है तथा काफी क्षेत्रफल वर्षाश्रित है। भूरा, काला रतुआ एवं झुलसा रोग गेहूँ की फसल के मुख्य रोग है।

मैदानी क्षेत्रों में गेहूँ का बुवाई का उपयुक्त समय है, जब दिन रात का औसत तापमान 21-23 डिग्री सेन्टीग्रेड हो जाता है। साधरणतया यह तापमान नवम्बर माह के दौरान हो जाता है। उत्पादकता एवं उत्पादन के स्तर को बढ़ाने के लिए समय को बुवाई का विशेष महत्व है ताकि फसल विकास को पूर्ण अवधि मिल सके। देर से बुवाई करने से गेहूँ के उत्पादन में कमी आती है। गेहूँ की समय से बुवाई का समय 5 से 25 नवम्बर तक करनी चाहिए।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित किस्मों के गुण

एच.डी. 4728

वर्ष 2016-17 में मध्य क्षेत्र की सिंचित एवं समय से बुवाई के लिए जारी ड्यूरम गेहूँ की इस किस्म की औसत पैदावार 5.42 टन प्रति हेक्टेयर एवं उपज क्षमता 6.8 टन प्रति हेक्टेयर है। रतुआ रोग रोधी यह प्रजाति 90 सेमी. लम्बी, अच्छे फुटाव वाली एवं 120 दिन में पक जाती है।

एच.आई 1605

प्रायद्वीपीय क्षेत्र में सीमित सिंचाई अवस्था हेतु वर्ष 2016-17 में अनुमोदित इस प्रजाति की औसत पैदावार 3 टन प्रति हेक्टेयर है एवं उपज क्षमता 4.4 टन प्रति हेक्टेयर है। मध्यम ऊचाई वाली यह प्रजाति 105-110 दिन में पककर तैयार हो जाती है। अच्छी चपाती की गुणवत्ता वाली यह प्रजाति काले एवं भूरे रतुआ रोगरोधी है।

तालिका 1. समय से बुवाई के लिए नवीनतम प्रजातियाँ

जोन	परिस्थिति	प्रजातियां
उत्तर पश्चिमी मेदानी जोन	सिंचित समय से बुवाई	एचडी 2967, एचडी 3086, डब्लयूएच 1105, डी.बी.डब्लू 621-50, डी.बी. डब्लू 88
	असिंचित समय से बुवाई	पी.बी.डब्लू 644
	सीमित सिंचाई एवं समय से बुवाई	एचडी 3043, डब्लू.एच 1142
उत्तर पूर्वी मेदानी जोन	सिंचित समय से बुवाई	एचडी 2967, के 9107 एन डब्लू 5054, डी.बी.डब्लू 39 के 1006, एन डब्लू 5054
	असिंचित समय से बुवाई	एचडी 2888, के-8027, एम.ए.सी.एस 6145, एच.डी. 3171
मध्य जोन	सिंचित समय से बुवाई	एच आई 1544, एम.पी.ओ 1515, एम.वी. 3288, जी.डब्लू 322 एच.आई 8498, एच.आई 8737, एच.डी. 4728, एच. आई 8759
	असिंचित समय से बुवाई	एच.आई 1531, एच.आई 8627,एच.डी 4672,यू.ए.एस 446
	सीमित सिंचाई एवं समय से बुवाई	डी.बी.डब्लयू 110,एच.आई 1531एच.आई 1605
प्रायद्विपीय जोन	सिंचित अवस्था समय से बुवाई	राज 4037, एम.ए.सी.एस 2846यू.ए.एस 428, यू.ए.एस304, डी.डी.के. 1025, यू.ए.एस 415
	असिंचित अवस्था समय से बुवाई	यू.ए.एस 347, एन.आई 5439 के 9644, एच.डी. 2781
	सीमित सिंचाई एवं समय से बुवाई	एच.डी. 2987, डी.बी.डब्लू 93, एन,आई,ए,डब्लू 1415

एच.आई-8759 (पूसा तेजस)

वर्ष 2017 में मध्य क्षेत्र की सिंचित अवस्था में समय से बुवाई के लिए जारी की गई डयूरम गेहूँ की प्रजाति है। इसकी औसत उपज 5.7 टन प्रति हैक्टेयर है। यह पास्ता, चपाती एवं अन्य सभी पारम्परिक व्यंजनों को बनाने के लिए उपयुक्त किस्म है। यह किस्म भूरे और काले रतुआ के प्रति अत्यंत प्रतिरोधी है।

एच.डी. 3171

भूरा, काला एवं पीला रतुआ रोगरोधी यह प्रजाति उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों की असिंचित अवस्था हेतु वर्ष 2016-17 में अनुमोदित की गई है। इस प्रजाति की औसत पैदावार 2.81 टन प्रति हेक्टेयर है। पकने की अवधि 120 दिन है।

एच.आई-8737 (पूसा अनमोल)

वर्ष 2014 में मध्य क्षेत्र की समय से सिंचित परिस्थितियों के लिए डुरूम गेहूँ की अनुमोदित किस्म। इसकी औसत उपज 5.34 टन/हे. है। यह किस्म कैरोटिन तथा आयरन व जिंक जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर है और इसमें करनाल बंट के विरुद्ध प्रतिरोधिता का अच्छा स्तर भी प्रदर्शित करती है।

एच.डी.-3086 (पूसा गौतमी)

वर्ष 2013 में पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा एवं उदयपुर संभागों के अलावा), उत्तर प्रदेश (झांसी संभाग के अलावा), जम्मू व कश्मीर के भाग (कठुवा जिला), हिमाचल प्रदेश के भाग (ऊना जिला एवं पौंटा घाटी) एवं उत्तराखण्ड (तराई क्षेत्र) में सिंचित अवस्था में समय पर बुवाई के लिए जारी किस्म। इसकी औसत उपज 5.46 टन/हेक्टेयर।

यह एक मध्य बौनी (93 सें.मी.) किस्म है, जो 143 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है। इस किस्म में पत्ती एवं स्ट्राइप रतुओं के लिए उच्च स्तर की प्रतिरोधकता है। इस किस्म में लूज स्मट एवं फ्लैग स्मट के प्रति भी

उच्च स्तर की प्रतिरोधकता विद्यमान है। यह किस्म रोटी के बनाने के लिए भी उत्तम है, क्योंकि इसका ग्लू-1 आंकड़ा 10/10 है। इस किस्म के दानों की दिखावट का आंकड़ा, हैक्टोलीटर वज़न उच्च ब्रेड लोफ वॉल्युम संख्या तथा ब्रेड गुणवत्ता के आंकड़े अच्छे हैं, इसीलिए इस किस्म की ब्रेड बनाने वाली औद्योगिक इकाइयों में माँग अच्छी होगी।

एच.डी.-3043 (पूसा चैतन्य)

वर्ष 2011 में पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा एवं उदयपुर संभागों के अलावा), उत्तर प्रदेश (झांसी संभाग के अलावा), जम्मू व कश्मीर के भाग (कठुवा जिला), हिमाचल प्रदेश के भाग (ऊना जिला एवं पौंटा घाटी) एवं उत्तराखण्ड (तराई क्षेत्र) के समय पर बुवाई के लिए अल्प सिंचित अवस्था में उगाने के लिए अनुमोदित किस्म। इसकी औसत उपज 4.28 टन/हेक्टेयर इस किस्म में पत्ती एवं धारीदार धब्बा रतुआ के प्रति उच्च श्रेणी की प्रतिरोधकता है। इसमें रोटी बनाने के लिए अति उत्तम एच.एम.डब्ल्यू. उप-इकाई के सभी संयोग ग्लू-1 के आंकड़े 8/10 के साथ उपस्थित हैं। इस किस्म में अच्छी रोटी बनाने एवं ब्रेड लोफ वॉल्यूम गुणवत्ता का आंकडा ऊँचा है। यह एक मध्यम बौनी किस्म है, जो 143 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।

एच.डी.-2967

वर्ष 2011 में पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा एवं उदयपुर संभागों के अलावा), पूर्वी उत्तर प्रदेश, जम्मू व कश्मीर के मैदानी क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, बिहार, झारखण्ड, ओड़िशा, पश्चिम बंगाल, आसाम व उत्तरी पूर्वी राज्यों के मैदानी क्षेत्र के सिंचित अवस्था में समय पर बुवाई के लिए अनुमोदित किस्म। इसकी औसत उपज 5.0 टन/हेक्टेयर है। यह किस्म बृहत क्षेत्रों में अच्छी उपज देती है। इस किस्म में सभी प्रचलित रतुआ रोगों के प्रति पौधावस्था पौध प्रतिरोधकता है। यह किस्म पत्ती झुलसा रोग के प्रति भी अच्छी प्रतिरोधी है। इसकी पकने की अवधि उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में 143 दिन है।

एच.आई.-2987 (पूसा बहार)

वर्ष 2010 में महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, गोवा व तमिलनाडु का मैदानी क्षेत्र की सीमित सिंचाई एवम् बारानी अवस्था में समय पर बूवाई के लिए अनुमोदित। इसकी औसत उपज बारानी 2.0-2.2 टन/हेक्टेयर, सीमित सिंचाई 3.0-3.2 टन/हेक्टेयर है। यह किस्म ब्रेड बनाने की गुणवत्ता से युक्त है।

एच.आई.-1544 (पूर्णा)

वर्ष 2007 में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान का कोटा व उदयपुर संभाग और उत्तर प्रदेश का झाँसी संभाग की सिंचित एवं समय पर बुवाई के लिए अनुमोदित। इसकी औसत उपज 5.0-5.5 टन/हेक्टेयर है। यह रोटी के लिये उत्तम, भूरे व काले रतुआ के लिये प्रतिरोधी तथा 110-115 दिन में पकने वाली किस्म है।

एच.आई.-1531 (हर्षिता)

वर्ष 2006 में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान के कोटा व उदयपुर संभाग और उ.प्र. का झाँसी संभाग की वर्षा आधारित, सीमित सिंचाई व अगेती बुवाई हेतु अनुमोदित। इसकी औसत उपज: 2.5-4.0 टन/हेक्टेयर है। यह रोटी के लिये अति उत्तम, भूरे व काले रतुओं के लिये प्रतिरोधी। इसकी पकने की अवधि 130-135 दिन है।

एच.डी.-2888 (पूसा गेहूँ)

वर्ष 2006 में पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, ओड़िशा, सिक्किम, पं. बंगाल, असम और उत्तर पूर्वी राज्यों के मैदानी क्षेत्र में बारानी अवस्था में समय पर बुवाई के लिए अनुमोदित किस्म। इसकी औसत उपज: 2.25 टन/हेक्टेयर। यह किस्म तना व पत्ती रतुआ रोग के लिए अत्यधिक प्रतिरोधी है तथा पीला रतुआ के लिए मध्यम प्रतिरोधी है। दानों से गुणवत्तापूर्ण पोषक तत्वों से

भरपूर आटे की अधिक मात्रा प्राप्त होती है। इसकी पकने की अवधि 135-140 दिन है।

एच.आई.-8627 (मालवकीर्ति)

वर्ष 2005 में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान के कोटा व उदयपुर संभाग और उ.प्र. का झाँसी संभाग की वर्षा आधारित, सीमित सिंचाई व अगेती बुवाई हेतु अनुमोदित। इसकी औसत उपज 2.0-4.5 टन/हेक्टेयर है। यह उच्च गणुवत्ता, प्रचरु विटामिन-ए, सुजी व दलिया के लिये उत्तम, भूरे व काले रतुओं क लिये प्रतिरोधी। यह किस्म पकने में 130-135 दिन का समय लेती है।

एच.डी.-4672 (मालवरत्न)

वर्ष 2000 में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान के कोटा व उदयपुर संभाग और उ.प्र. का झाँसी संभाग की वर्षा आधारित एवम् अगेती बुवाई हेतु अनुमोदित। इसकी औसत उपज 2.0-3.5 टन/हेक्टेयर है। यह उच्च गणुवत्ता, सुजी व दलिया के लिये उत्तम, भूरे व काले रतुओं क लिये प्रतिरोधी। इसकी परिपक्वता अवधि 120-125 दिन है।

एच.आई.-8498 (मालवशक्ति)

वर्ष 1999 में मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान के कोटा व उदयपुर संभाग और उ.प्र. का झाँसी संभाग की सिंचित एवम् समय पर बूवाई के लिए अनुमोदित। इसकी औसत उपज 5.0-6.0 कुन्तल/हेक्टेयर है। यह किस्म सुजी व दलिया के लिये उच्च गुणवत्तायुक्त भूरे व काले रतुओं के लिये प्रतिरोधी है। इसकी पकने की अवधि 120-125 दिन है।

उपरोक्त किस्मों के बीज प्राप्त करने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के एटिक तथा बीज उत्पादन इकाई से संपर्क किया जा सकता है।

अधिक जानकारी के लिए टाल फ्री नम्बर 1800 11 8989 पर भी संपर्क किया जा सकता है।

□□□

सरसों फसल का मूल आधार-उन्नत बीज

ज्ञानेन्द्र सिंह, रमेश चन्द, चन्दू सिंह एवं संजय कुमार
बीज उत्पादन इकाई, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत संसार में कुल सरसों उत्पादन का 12 प्रतिशत तथा तेल उत्पादन का 8.5 प्रतिशत के साथ तीसरा सबसे बड़ा देश है। भारत में राजस्थान सरसों के क्षेत्रफल तथा उत्पादन में प्रथम स्थान रखता है। भारत में कुल सरसों उत्पादन के प्रमुख राज्य राजस्थान 45 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश 13 प्रतिशत, हरियाणा 11 प्रतिशत तथा पश्चिमी बंगाल 8 प्रतिशत हैं। इन राज्यों में लगभग 74 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र में सरसों की खेती की जाती है। उत्पादकता की दृष्टि से देश में हरियाणा (1880 किग्रा./हैक्टर) प्रथम स्थान पर है। हरियाणा के बाद उत्पादकता में गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा बिहार का स्थान है। देश की कुल औसत उत्पादकता 1183 किग्रा./प्रति हैक्टर है। वर्ष 2015-2016 के अनुसार संसार में सरसों का क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता क्रमशः 340.5 लाख हैक्टेयर, 700.5 लाख मैट्रिक टन तथा 2060 किग्रा. प्रति हैक्टेयर है (यू एस डी ए ओफिस ऑफ ग्लोबाल एनालेसिस 2017) जबकि भारत में सरसों का क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता क्रमशः 57.5 लाख हैक्टेयर, 67.96 लाख टन तथा 1183 किग्रा. प्रति हैक्टेयर है (कृषि मन्त्रालय, भारत सरकार 2016 तथा एस ओ एफ ए 2017) जो विश्व की तुलना में भारत में सरसों की उत्पादकता बहुत कम है। तेलीय फसलों का कृषि में क्षेत्रफल कम होने तथा बढ़ती आबादी के कारण खाद्य तेलों की मांग में वृद्धि हुई है। इसलिए यह आवश्यक है कि सरसों के उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि की जाये। उत्पादन के सभी संसाधनों जैसे सिंचाई, खाद एवं उर्वरक, रसायनों का प्रयोग तथा नवीन उत्पादन तकनीक के बाद भी सरसों की उन्नत प्रजातियों के उन्नत बीज के बिना वांछित परिणाम प्राप्त नहीं किये जा सकते। प्रति हैक्टर उत्पादन बढ़ाने के लिए यह अति आवश्यक है कि किसानों को सरसों की उन्नत प्रजातियों का उन्नत बीज समय पर उपलब्ध हो सके। अभी भी देश में 70 प्रतिशत से अधिक किसान स्वयं का या दूसरे किसानों द्वारा उत्पादित फसलों को ही बीज के रूप में प्रयोग करते हैं, जबकि वैज्ञानिक अध्ययनों से यह पाया गया है कि केवल उन्नत बीजों के उपयोग से उत्पादकता मे 15-20 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है। बीज उत्पादन के क्षेत्र में 1995 से भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली की बीज उत्पादन इकाई, सरसों की नवीनतम प्रजातियों का उन्नत बीज पैदा करके तथा किसानों मे वितरित करके राष्ट्रीय स्तर पर फसल उत्पादन तथा उत्पादकता बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। उन्नत बीजों की उपलब्धता के कारण, बीज उत्पादन इकाई किसानों के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रही है। रबी के मौसम में उगाने के लिए सरसों की उन्नत प्रजातियों का उन्नत बीज बिक्री हेतु, बीज उत्पादन इकाई, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में उपलब्ध हैं। बीज उत्पादन के लिए प्रजनक बीज भी पूसा संस्थान मे उपलब्ध हैं। बीज उत्पादक प्रजनक बीज खरीद कर उत्पादन करके अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं ।

सरसों की प्रमुख प्रजातियाँ

भारत में सरसों की अगेती, समय से व पछेती बुवाई को ध्यान में रखते हुए अनेक प्रजातियों का विकास किया हैं जिसमें भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान का विशेष योगदान हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा निकाली गई प्रमुख प्रजातियों का विवरण निम्न प्रकार है। अन्य संस्थानों तथा कृषि विश्वविधालयों द्वारा निकाली गई प्रमुख प्रजातियों का विवरण तालिका 1 में दर्शाया गया है।

1. पूसा विजय (एन.पी.जे.-93)

यह प्रजाति 2008 वर्ष में दिल्ली तथा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के लिए विमोचित की गई है। लेकिन इसकी अधिक पैदावार की दृष्टि से इसकी लोकप्रियता उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में भी तेजी से बढ़ रही हैं। यह प्रजाति सिंचित क्षेत्रों में समय से बुवाई के लिए सर्वोत्तम है। इसकी औसत पैदावार 25 कुन्तल प्रति हैक्टर है। यह उच्च तापक्रम, लवणीयता व गिरने के प्रति सहनशील है तथा इसके पौधों की ऊँचाई 170-180 सेमी. तक होती है। यह मोटे दाने वाली (6 ग्राम/1000 दाने) प्रजाति हैं, जिनमें तेल की औसत मात्रा 38.5 प्रतिशत है। यह किस्म बुवाई के 140 दिन बाद पककर तैयार हो जाती है। यह स्क़ेद रतुआ, चूर्णी फफूंदी, मृदुरोमिल आसिता तथा स्क्लेरोटीनिया सड़न के प्रति सहिष्णु है।

2. पूसा जगन्नाथ (वी.एस.एल.-5)

इस प्रजाति का विमोचन केन्द्रीय प्रजाति विमोचक समिति द्वारा वर्ष 1999 में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और राजस्थान के राज्यों के लिए किया गया है। यह समय से सिंचित क्षेत्रों में बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी औसतन पैदावार 25 कुन्तल प्रति हैक्टर है। इसका दाना मध्यम (5.5 ग्राम/1000) आकार का होता जिसमें तेल की मात्रा 40 प्रतिशत है। यह बुवाई के 125 दिन में तैयार हो जाती है।

3. पूसा बोल्ड

इस प्रजाति का विमोचन 1985 दिल्ली व पूर्वी राज्यों के लिए किया गया है परन्तु अच्छे प्रदर्शन व लोकप्रियता के कारण इसे उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, पश्चिमी बंगाल, बिहार व उड़ीसा राज्यों के लिए भी अनुमोदित किया गया। इसके पौधों की औसत ऊँचाई 180 सेमी. होती है। इसकी फलियाँ लम्बी तथा पकने पर चटखती नही हैं। यह समय पर सिंचित क्षेत्रों में बुआई के लिए उपयुक्त है। यह बुवाई के 140 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके दानों में तेल की मात्रा 40 प्रतिशत व औसत पैदावार 19 कुन्तल प्रति हैक्टर है।

4. पूसा जयकिसान (बायो 902)

इस प्रजाति का विमोचन केन्द्रीय प्रजाति समिति द्वारा वर्ष 1993 में राजस्थान, गुजरात और पश्चिमी महाराष्ट्र के सिंचित क्षेत्रों के लिए किया गया है। यह समय से बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी औसतन पैदावार 25.0 कुन्तल प्रति हैक्टर है। इसका दाना मध्यम (6.8 ग्राम/1000) आकार का है, जिसमें तेल की मात्रा 40 प्रतिशत है यह बुवाई के 125 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उँचाई 175-190 सेमी. है।

5. पूसा तारक (ई.जे.-13)

यह अगेती प्रजाति है और इसे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र तथा दिल्ली के लिए वर्ष 2009 में विमोचित किया गया। इसकी औसत पैदावार 19.24 कुन्तल प्रति हैक्टर है। इसकी बुवाई सितम्बर से दिसम्बर तक कर सकते हैं। इसकी अगेती फसल की कटाई के बाद प्याज व गन्ने की खेती कर सकते हैं। इसमें तेल की औसत मात्रा 40.1 प्रतिशत है। यह पूरी तरह पक जाने पर भी नहीं झड़ती है। यह बुवाई के 115-120 दिन में पक कर तैयार हो जाती है।

6. पूसा महक (जे.डी.-6)

इस प्रजाति का विमोचन वर्ष 2005 में केन्द्रीय प्रजाति विमोचन द्वारा अगेती प्रजाति के रूप में किया

सारणी 1: अन्य प्रमुख प्रजातियों का विवरण

प्रजाति का नाम	अनुमोदन का वर्ष	अनुमोदन का स्थान	उत्पादन क्षमता (किग्रा./है.)	तेल की मात्रा	अनुमोदित क्षेत्र	अन्य विशेषतायें
डी आर एस आर आई जे-3	2015	डी आर एम आर भरतपुर	2246-2757	38.8-42.5	दिल्ली,हरियाणा,पंजाब, जम्मू, राजस्थान	अधिक पैदावार वाली मोटेदाने की प्रजाति
आर एच-0749	2013	एच ए यू हिसार	2400-2800	39-39.5	दिल्ली, हरियाणा,पंजाब, जम्मू, राजस्थान	सिंचित, समय से बुवाई
दिव्या-33	2013	-	1999-3560	36-40.7	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	अधिक तापक्रम के प्रति सहनशील
राज विजय मस्टर्ड-2 जे एम डब्लयु आर 8-3	2013	आर ए यू बीकानेर	1276-1874	37.1-41.2	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	सफेद खुन्ना के प्रति मध्यम सहनशील
आर एच-0406	2013	एच ए यू हिसार	2200-2300	38-40	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	मोटेदाने वाली प्रजाति गिरने के प्रतिरोधी
आर जी एन-236	2013	आर ए यू ए आर एस श्रीगंगानगर	1485-1808	36.3-40.8	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	अधिक तापमान तथा अम्लता प्रतिरोधी
आर जी एन-229	2013	आर ए यू ए आर एस श्रीगंगानगर	2162-2568	37.8-42.1	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	अधिक तापमान तथा अम्लता प्रतिरोधी
पी बी आर-378	2012	पी ए यू लुधियाना	1228-3484	37.7-41.9	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	समय से बुवाई तथा वर्षा आधारित प्रजाति
कोरल- 437	2012	यूनाइटेड फास्फोरस बैंगलोर	1831-2581	39.2-41.2	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	सफेद रतुआ प्रतिरोधी
आर एल सी-2 ई एल एम-123	2012	-	2039-2342	36.3-38.9	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	तेल की गुणवत्ता अच्छी
पंत राज-19 पी आर-20016	2012	पंत नगर कृषि विश्वविद्यालय	1831-2511	40.9-41.8	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	बुवाई के समय अधिक तापक्रम के प्रति सहनशील
पी बी आर-357	2011	पी ए यू लुधियाना	1373-3819	35.8-41.5	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	सिंचित ,समय से बुवाई
डी एम आर-601	2010	डी आर एम आर भरतपुर	1939-2626	39-42	दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू, राजस्थान	बुवाई के समय अधिक तापमान तथा अम्लता प्रतिरोधी
कोरल पी ए सी-432	2010	यूनाइटेड फास्फोरस बैंगलोर	1831-2581	40-42	उत्तर प्रदेश,उत्तराखण्ड तथा राजस्थान	संकर प्रजाति
एन आर सी एच बी-506	2009	डी आर एम आर भरतपुर	1550-2542	39-43	मध्य प्रदेश,उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा पूर्वी राजस्थान	संकर प्रजाति
पी बी आर-210	2007	आर एस एस पी ए यू भटिन्डा	2080-2532	38-39	पंजाब	पंजाब में शीध्र पकने वाली

गया तथा बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, असम, दिल्ली तथा राष्ट्रीय राजधानी के सिंचित क्षेत्रो में उगाने के लिए अनुकूल पाया गया है। इसकी औसत पैदावार 17.5 कुन्तल प्रति हैक्टर है। इसमें तेल की औसत मात्रा 40 प्रतिशत है और बुवाई के 115-120 दिन में पककर तैयार हो जाति है। देश के उत्तर पूर्वी राज्यों में धान की कटाई के बाद इस प्रजाति को बोया जा सकता है। इसकी सितम्बर बुवाई के बाद उत्तरी भारत में प्याज व गन्ने की खेती की जा सकती है।

7. पूसा अग्रणी (एस.ई.जे.-2)

इस प्रजाति का विमोचन 1998 में पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, बिहार, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा तथा असम के लिए किया गया। यह सिंचित अवस्था में अगेती तथा पछेती बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी औसतन पैदावार 17.5 कुन्तल प्रति हैक्टर है। यह कम अवधि (110 दिन) में पकने वाली राया की प्रथम प्रजाति है तथा तोरिया का एक अच्छा विकल्प है। इसे देश के उत्तर-पूर्वी व पूर्वी राज्यों में धान की फसल के बाद बोया जा सकता है इसका दाना मध्यम (4.5 ग्राम/1000) आकार का है, जिसमें तेल की मात्रा 39 प्रतिशत है। फसल पीली पड़ने पर तुरन्त काटकर तिरपाल पर एकत्र करके, सुखाकर मढ़ाई करनी चाहिए अन्यथा देर से कटाई करने पर झड़ने का खतरा रहता है।

8. पूसा सरसों 21 (एल.ई.एस. 1-27)

यह प्रजाति वर्ष 2007 में राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ मे उगाने के लिए जारी की गई थी। यह कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली प्रजाति है। यह सिंचित क्षेत्रों में तथा समय पर बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसमे तेल की औसत मात्रा 36 प्रतिशत है इसकी औसत पैदावर 21.10 कुन्तल प्रति हैक्टर है।

9. पूसा सरसों 22 (एल.ई.टी.-17)

यह प्रजाति वर्ष 2008 मे गुजरात, पश्चिमी महाराष्ट्र के सिंचित क्षेत्रों के लिए समय पर बुवाई के लिए अनुमोदित की गई थी। यह कम ईरूसिक अम्ल (2% से कम) वाली प्रजाति है। इसकी पैदावार 20.7 कुन्तल प्रति हैक्टर है। यह प्रजाति 142 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसके 1000 दानों का वजन 3.6 ग्राम होता है तथा इसकी पैदावार क्षमता 27.50 कुन्तल प्रति हैक्टर है।

10. पूसा सरसों 24 (एल.ई.टी.-18)

यह प्रजाति वर्ष 2008 में राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश के मैदानी क्षेत्र तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों लिए जारी की गई थी। यह समय पर बोने के लिए उपयुक्त किस्म तथा 20.2 कुन्तल प्रति हैक्टर पैदावार देती है। यह बुवाई के 140 दिन मे पककर तैयार हो जाती है। इसके 1000 दानों का वजन 4 ग्राम होता है। यह कम इरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) की प्रजाति है।

11. पूसा सरसों.-25 (एन.पी.जे.-112)

इसका विमोचन वर्ष 2010 में केन्द्रीय प्रजाति विमोचन समिति द्वारा राजस्थान, हरियाणा, पंजाब दिल्ली, जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लिए किया गया था। यह सिंचित अवस्था में अगेती बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी औसत पैदावार 14.7 कुन्तल प्रति हैक्टर है। यह सितम्बर (खरीफ की फसल के काटने के बाद) से मध्य दिसम्बर तक बुवाई के लिए उपयुक्त है। इसकी ऊँचाई 110 से 125 सेमी होती है। यह बारीक दाने वाली प्रजाति है। यह 107 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा इसके दानों में तेल का औसत 39.6 प्रतिशत है।

12. पूसा सरसों.-26 (एन.पी.जे.-113)

यह बारीक दाने वाली अगेती प्रजाति है। इसके पौधों की उँचाई 110-125 सेमी. होती है। यह बुवाई के 126

दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत पैदावार 17.5 कुन्तल प्रति हैक्टर हैं। इस प्रजाति को दिल्ली, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा के सिंचित क्षेत्रों मे मध्य सितम्बर में बुवाई करके दिसम्बर के अंत तक काटकर गेहूँ, प्याज तथा मक्का आदि की फसल लेने के लिए अधिक उपयुक्त है।

13. पूसा सरसों-27 (ई.जे.-17)

यह प्रजाति 2010 में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा राजस्थान के कोटा क्षेत्र में उगाने के अनुकूल है। यह अगेति बुवाई सितम्बर के लिए अनूकूल है। इसकी औसतन पैदावार 15.35 कुन्तल प्रति हैक्टर है। इसमें 41.7 प्रतिशत तेल पाया जाता है।यह बुवाई के 118 दिन में पक्कर तैयार हो जाती है। यह अंकुरण के समय तथा पकने के समय अधिक तापक्रम के प्रति सहनशील है। यह तोरिया का एक अच्छा विकल्प है। यह सितम्बर से मध्य दिसम्बर तक फसल चक्र के अनुकूल है।

14. पूसा सरसों-28 (एन.पी.जे.-124)

यह प्रजाति 2010 में हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, जम्मू कश्मीर के मैदानी क्षेत्र, दिल्ली एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अगेति बुवाई के लिए अनुमोदित की गई। इसकी औसतन पैदावार 19.93 कुन्टल प्रति हैक्टर है। यह बुवाई के 107 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह उच्च तापमान को सहन करने में सक्ष्म है। इसमें 41.5 प्रतिशत तेल पाया जाता है। यह सिंचित क्षेत्रों में तोरिया का एक अच्छा विकल्प है। यह सितम्बर से मध्य दिसम्बर तक फसल चक्र के लिए अनुकूल है।

15. पूसा सरसों-29 (एल.ई.टी.-36)

यह 2013 में पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों के लिए अनुमोदित की गई। यह कम ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) वाली प्रजाति है। यह सिंचित क्षेत्रों में 21.69 कुन्तल प्रति हैक्टर पैदावार देती है तथा इसकी उत्पादन क्षमता 30.05 कुन्तल प्रति हैक्टर है। इसमें तेल की मात्रा 37.2 प्रतिशत तथा बुवाई के 143 दिन में पककर तैयार हो जाती है। यह अंकुरण एवं पकने के समय अधिक तापमान के प्रति सहनशील है।

16. पूसा सरसों-30 (एल.ई.एस.-43)

यह प्रजाति 2013 में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तराखण्ड के मैदानी क्षेत्रों तथा पूर्वी राजस्थान में समय से सिंचित क्षेत्रों में बुवाई के लिए जारी की गई । इसके 1000 दानो का भार 5.38 ग्राम तथा इसमें ईरूसिक अम्ल (2 प्रतिशत से कम) होता है। इसमें 37.7 प्रतिशत तेल होता है। तथा यह बुवाई के 137 दिन में पक्कर तैयार हो जाती है। इसकी औसतन पैदावार 18.24 कुन्टल प्रति हैक्टर है।

17. पूसा करिश्मा (एल.ई.एस.-39)

यह वर्ष 2005 में अनुमोदित कम ईरूसिक अम्ल वाली प्रथम प्रजाति है। यह सिंचित, क्षेत्रों में तथा समय पर बुवाई के लिए उपयुक्त है। यह 22.0 कुन्तल प्रति हैक्टर तक पैदावार देती है। यह राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली के लिए उपयुक्त है।

18. पूसा स्वर्णिम (आई.जी.सी.-01)

यह करण राई की वर्ष 2003 मे अनुमोदित प्रजाति है जो राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, उत्तराखण्ड के सिंचित तथा बारानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। यह सिंचित अवस्था मे 16.7 क्विंटल तथा बारानी क्षेत्रो में 14 क्विंटल प्रति हैक्टर पैदावार देती है। इसमे तेल की मात्रा 40-43 प्रतिशत तक होती है, इस किस्म मे उच्च दर्जे की सूखा सहिष्णुता है तथा सफेद रतुआ के प्रति उच्च प्रतिरोधकता है। यह लम्बी अवधि की प्रजाति है।

19. पूसा आदित्य (एन.पी.सी.-9)

यह करण राई की प्रमुख प्रजाति है जिसे वर्ष 2006 में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के लिए बारानी अवस्थाओं में समय पर बुवाई के लिए विमोचन किया गया । इसकी

औसत पैदावार 14.00 कुन्तल प्रति हैक्टर है। यह प्रजाति बारानी अवस्थाओं में एवं कम उपजाऊ भूमि में अच्छी पैदावार देती है तथा डाउनी मिल्डयू व सफेद रतुआ रोग प्रति रोधी है। यह झुलसा, तना गलन, पाउड्री मिल्डयू के प्रति भी सहिश्णु और चैपा के प्रति सहनशील है। इस प्रजाति के दाने बहुत छोटे (4 ग्राम/1000) आकार के हैं, इसमें तेल की माला 40 प्रतिशत होती है। इस प्रजाति के पौधों की औसत ऊँचाई 200-230 सेमी. होती है। यह विपरीत परिस्थितियों में अच्छी उपज देने वाली करण राई की महत्वपूर्ण प्रजाति है।

प्रजातियों का चुनाव तथा बुवाई का समय

प्रजातियों का चुनाव करते समय फसल की अवधि बुवाई के समय तथा क्षेत्र विशेष के लिए अनुमोदन के आधार पर फसल चक्र को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए। जिन क्षेत्रों में सरसों के बाद प्याज, गेहूँ, मक्का की बुवाई तथा टमाटर की रोपाई करनी है। उन क्षेत्रों में पूसा सरसों 25 तथा पूसा सरसों 28 की बुवाई सितम्बर के प्रथम पखवाड़े में अवश्य करनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में सरसों की बुवाई के बाद अगेता गन्ना तथा सब्जियों की बुवाई करनी है, उन क्षेत्रों में पूसा सरसों 26, पूसा सरसों 27, पूसा तारक, पूसा महक की बुवाई सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में करनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में सरसों के बाद मूँग की बुवाई करनी है, उन क्षेत्रों में पूसा विजय, पूसा सरसों 29, पूसा सरसों 30, पूसा जय किसान, पूसा जगन्नाथ, पूसा बोल्ड, पूसा करिश्मा, पूसा सरसो-21, पूसा सरसो-22, पूसा सरसो-24 की बुवाई अक्टूबर माह में करनी चाहिए। जिन क्षेत्रों में सरसों की बुवाई नवम्बर-दिसम्बर में की जाती है उन क्षेत्रों में अगेति प्रजातियाँ जैसे पूसा सरसों 25, पूसा सरसों 26, पूसा सरसों 28, को उगाना अधिक लाभप्रद रहता है। गुणवत्ता बीज उत्पादन एवं उत्पादकता की दृष्टि से उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में सभी प्रजातियों की बुवाई सामान्यत: 5 अक्टूबर से 25 अक्टूबर के बीच करनी चाहिए । लम्बी अवधि वाली प्रजातियों को अक्टूबर के प्रथम पखवाड़े में तथा कम अवधि वाली प्रजातियों को अक्टूबर के द्वितीय पखवाड़े में बुवाई करना अधिक लाभप्रद पाया गया है। अधिक लम्बी अवधि की प्रजातियों को देर से बुवाई करने पर पकने के समय अधिक तापक्रम के कारण दानों का पूर्ण विकास नही हो पाता तथा फसल में चैपा से अधिक हानि होती है। देश के ऐसे क्षेत्रों जहाँ सिंचाई के कोई साधन नहीं है, उन क्षेत्रों में पूसा स्वर्णिम या पूसा आदित्य की बुवाई करनी चाहिए। इन प्रजातियों की बुवाई सितम्बर के अन्त या अक्टूबर के शुरू में (वर्षा आधारित या पलेवा करके) करनी चाहिए। सरसों की बुवाई के समय औसतन तापक्रम 26-28° सेल्सियस होना चाहिए।

भूमि व उसकी तैयारी

सरसों के बीजोत्पादन के लिए दोमट या बलुई दोमट भूमि जिसका पीएच मान 7 से 8 के बीच हो तथा जिसमें पर्याप्त जीवांश हो, सर्वोत्तम रहती है। जिन क्षेत्रों में फव्वारा विधि से सिंचाई नहीं की जाती उन क्षेत्रों मे भूमि का समतल होना बहुत आवश्यक है। बुआई के लिए खेत को तैयार करते समय दो बार हैरो या मिट्टी पलट हल से गहरी जुताई करके बाद में 2 बार देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई करनी चाहिए तथा पाटे का प्रयोग प्रत्येक जुताई के बाद अवश्य करना चाहिए ताकि मिट्टी भुरभुरी बन जाये तथा खेत में नमी संरक्षित की जा सके। बुआई के समय यदि खेत में ढेले रह जायें तो इसके बीज का अंकुरण प्रभावित होता है। ढेले के नीचे दबे बीज वर्षा होने पर या प्रथम सिंचाई के बाद अंकुरित होते हैं जिससे फसल के एक साथ न पकने के कारण कटाई में परेशानी होती है तथा बीज की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है।

पृथकरण दूरी

सरसों तोरिया और राया के लिए एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति के बीच कम से कम 200 मी. व 100 मी. की दूरी आधार व प्रमाणित बीज पैदा करने के लिए आवश्यक है। इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि जिस खेत में सरसों का बीज पैदा करना है उसमें

सारणी 2. खेत एवं बीज के मानक

मानक	स्तर	
	आधार बीज	प्रमाणित बीज
पृथक्करण दूरी	200 मीटर	100 मीटर
अन्य प्रजाति के पौधें	0.10 प्रतिशत	0.50 प्रतिशत
आपत्तिजनक खरपतवारों के पौधे	0.05 प्रतिशत	0.01 प्रतिशत
फसल निरीक्षण की संख्या	3 बार	3 बार
बीज ढेर का आकार (अधिकतम)	100 किवंटल	100 किवंटल
परीक्षण हेतु नमूने का आकार	160 ग्राम.	160 ग्राम.
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	97.0 प्रतिशत	97.0 प्रतिशत
अक्रिय तत्व (अधिकतम)	3.0 प्रतिशत	3.0 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	10 प्रति किग्रा.	20 प्रति किग्रा.
कुल खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	10 प्रति किग्रा.	20 प्रति किग्रा.
आपत्तिजनक खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	5 प्रति किग्रा.	10 प्रति किग्रा.
अंकुरण क्षमता (न्यूनतम)	85 प्रतिशत	85 प्रतिशत
बीज में नमी सामान्य पैकिंग में बीज में नमी (अधिकतम)	8.0 प्रतिशत	8.0 प्रतिशत
वायुरोधी पैकिंग में (अधिकतम)	5.0 प्रतिशत	5.0 प्रतिशत

पहले वर्ष सरसों, राया तथा तोरिया की खेती नहीं होनी चाहिए अन्यथा समय पर उनके बीज अंकुरित होने से बीज की शुद्धता खराब हो जाती है। बीज तथा खेत के मानक सारणी 2 में दर्शाये गये है।

बीज की मात्रा और उपचार

समान्यत: 3.5 से 4 कि.ग्रा. बीज एक हैक्टर की बुआई के लिए पर्याप्त है। अगेति बुवाई के लिए बीज मात्रा 4.5 से 5 किग्रा. प्रति हैक्टर रखनी चाहिए। बीज को बुआई से पूर्व थायरम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए।

बुआई की विधि

बीजोत्पादन के लिए सामान्यत: कतार से कतार की दूरी 45 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 से. मी. रखनी चाहिए। बीज की गहराई 2.5 से 3 सेमी. रखनी चाहिए। बीजोत्पादन के लिए हमेशा कतार में सीडड्रिल से बुआई करना अच्छा रहता है ताकि रोगिंग में सूविधा हो तथा निराई-गुड़ाई भी आसानी से की जा सके। बुआई से पूर्व सीड ड्रिल का समायोजन अवश्क कर लेना चाहिए ताकि उचित मात्रा में बीज का प्रयोग किया जा सके तथा सीडड्रिल की स्फाई अच्छी प्रकार करनी चाहिए ताकि मिश्रण की संभावना न रहे। बीज की बुवाई खेत में उचित नमी की अवस्था पर ही करनी चाहिए तथा बुवाई करते समय ट्रैक्टर धीरे चलाना चाहिए ताकि सीड ड्रिल से बीज न छिटकें तथा इस बात का भी ध्यान रहे कि बीज की सभी नालियां खुली हों।

खाद और उर्वरक

बीजात्पादन के लिए उगाई गई फसल में बुआई से पूर्व 15 से 20 टन प्रति हैक्टर गोबर की सड़ी खाद तथा उर्वरकों के रूप में 80 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फॉस्फोरस, 30 किग्रा. पोटाश तथा 30 किग्रा. सल्फर प्रति हैक्टर प्रयोग करना चाहिए। फॉस्फोरस, पोटाश,

सल्फर की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा बुआई के समय प्रयोग करनी चाहिए। बुवाई 30 से 35 दिन बाद 40 किग्रा. नत्रजन प्रथम सिंचाई के समय प्रयोग करना चाहिए। प्रति एकड़ एक पैकेट एजेटोबैक्टर का प्रयोग भी बहुत उपयोगी रहता है। जिंक की कमी से पौधें की बढ़वार धीमी पड़ जाती है। जिंक की कमी के लक्षण बुआई के 20 से 25 दिन बाद पत्तियों पर आते हैं, पत्तियों का आकार छोटा रह जाता है और उनके किनारे गुलाबी हो जाते हैं तथा शिराओं के मध्य में ऊतकों का रंग पीला, सफेद या कागजी सफेद हो जाता है जबकि शिरायें हरी ही रहती हैं। पत्तियां नीचे या ऊपर की तरफ प्याले की आकृति लेती हैं। जिंक अधिक कमी से पत्तियाँ मर भी जाती हैं। प्रभावित पौधों पर फूल तथा फली देर से बनती हैं । अत: बीजोत्पादन के लिए 25 किग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर लाभदायक है। खड़ी फसल में जिंक की कमी दिखाई दे तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का घोल बनाकर छिड़काव करने से बीज की गुणवत्ता व मात्रा में वृद्धि होती है। फूल आने के समय मल्टीप्लेक्स या एग्रेमिन 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करने से परागण पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

सिंचाई

अगेती सरसों में सामान्यत: दो सिंचाई पर्याप्त रहती हैं। प्रथम सिंचाई बुआई के 30 से 35 दिन बाद तथा दूसरी सिंचाई फलियों में बीज बनने की अवस्था पर सूखे की स्थिति में करनी चाहिए। आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने से फसल के गिरने का डर होता है तथा फूल आते रहते हैं जिसके कारण फलियां एक साथ न पकने के कारण बीज की गुणवत्ता प्रभावित होती है एवं फसल में फफूंदी जनक रोग बढ़ाने की सम्भावना भी अधिक रहती है। सिंचाई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि खेत में पानी खड़ा न रहे।

फसल सुरक्षा: सरसों की फसल में प्रमुख निम्न रोग तथा कीट आक्रमण करते है।

प्रमुख रोग

स्क्लेरोटिनिया रोट

इस रोग का प्रकोप होने पर तनों पर भूरे रंग के चब्बे दिखाई देते हैं एवं ग्रसित पौधे अन्दर से पीले हो जाते हैं। इस रोग का भयंकर प्रकोप होने पर तनों के अन्दर काले रंग की छोटी-छोटी आकृतियां बन जाती है। पूरा पौधा सड़कर गिर जाता है तथा पैदावार में भारी कमी आती है। यह रोग भूमि के द्वारा फैलता है। इसके नियंत्रण के लिए बीज का बाविस्टीन 3 ग्रा. प्रति किग्रा. की दर से उपचारित करके बुवाई करें तथा खेत में 3 साल तक लगातार सरसों न उगायें एवं गर्मियों में खेतों की गहरी जुताई करें ताकि रोगाणु नष्ट हो जाये। खेत में बीमारी का प्रकोप दिखाई देने पर बुवाई के 70 से 80 दिन बाद बावास्टिन (कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू पी) का 0.05 से 0.10 प्रतिशत का 200 से 300 ली. पानी प्रति एकड़ की दर से 10 से 12 दिन के अंतराल पर छिड़काव करे।

सफेद रतुवा

सफेद रतुवा रोग के लक्षण दिखाई देने पर रिडोमिल एम जेड डब्ल्यू पी. 2 ग्रा. प्रति ली. 200-300 ली. पानी प्रति एकड़ का घोल बनाकर छिड़काव करें ओर आवश्यकता पड़ने पर रिडोमिल या मनकोजेब (इंडोफिल एम45/डाएथेन एम45) का स्प्रे दोबारा 15 दिन बाद करे।

अल्टेनेरिया ब्लाईट

रोग के लक्षण दिखाई देने पर मनकोजेब (डाएथेन एम45) 2 ग्रा. प्रति ली. 200-300 ली. पानी प्रति एकड़ का घोल बनाकर छिड़काव करें यदि आवश्यकता पड़े तो छिड़काव दोबारा भी करते है।

पाउडरी मिल्ड्यू (चूर्णिल आसिता)

डाएथेन एम45 धुलनशील गन्धक 0.5 किग्रा. प्रति एकड 200-300 लीटर पानी से छिड़काव करे।

कीट

बगराडा (घोलिया)

यह सरसों का प्रमुख रोग है। यह चितकबरे रंग का छोटा सा कीट है जो फसल के उगने के समय नवजात पौधों को काटकर खेत खाली कर देता है। इसके कीट दिन में भूमि की दरारों में छिपे रहते हैं तथा रात को बाहर निकलकर पौधों पर आक्रमण करते हैं। यह की फसल पकने की अवस्था पर भी भारी आक्रमण करता हैं। यह कीट अगेती सरसों की फसल में अधिक आक्रमण करता है। इसके नियंत्रण के लिए अंकुरण के तुरन्त बाद खेत में फोलीडोल डस्ट या मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत 25 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से हैण्ड डस्टर की सहायता से अच्छी तरह बुरकाव करना चाहिए तथा फसल पकने की अवस्था पर डेल्टामेथ्रिन 2 मिली. प्रति ली. की दर से छिड़काव करने से नियंत्रण हो जाता है।

चैपा (तेला)

यह सरसों का अत्यंत हानिकारक कीट है जो पौधों की पत्तियों, फूल तथा फलियों से रस चूसकर हानि पहुँचाता है। जब आसमान में बादल रहते हैं तब इसकी संख्या में तेजी से बढ़ोतरी होती है। इसके नियत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस 25 ई.सी. या थियोमिडोन 25 ई.सी. 400 मिली. या फोस्फोमिडोन 85 डब्लयू एस. सी. 100 मिली. या मैलाथियान 50 ई.सी. 500 मिली. कीटनाशी का 200-300 ली. पानी प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करे।

निराई गुड़ाई एवं थिनिंग

बुवाई के 20-22 दिन बाद अनावश्यक पौधों को निकालकर पौधे से पौधे की दूरी 10 सेंमी. कर देनी चाहिए ताकि पौधों की बढ़वार अच्छी तरह हो सके। प्रथम सिंचाई के बाद एक निराई-गुड़ाई आवश्यक है। खरपतवारों की अधिकता की स्थिति में बुवाई के बाद 24 घन्टे के अन्दर पेन्डिमेथीलीन 3 ली. प्रति हैक्टेयर का छिड़काव करना चाहिए। पेन्डिमेथीलीन के छिड़काव के बाद 15-20 दिन तक किसी प्रकार की कर्षण क्रियायें नहीं करनी चाहिए। अन्यथा भूमि की ऊपरी परत टूटने से खरपतवार नाशक का प्रभाव कम हो जाता है।

अवांछनीय पौधों को निकालना

शुद्ध बीज पैदा करने के लिए प्रजातियों के गुणों का ज्ञान होना बहुत आवश्यक है पौधों की बढ़वार की अवस्था, फूल आने की अवस्था, फसल पकने की अवस्था पर तथा पकने की अवस्था पत्तियों के आकार तथा बनावट, पौधों की उंचाई, फूल का रंग, फली की लम्बाई, फली की आकार, फली का रंग के आदि गुणों आधार पर पर खेत में घूमकर अन्य प्रजातियों के पौधों को तथा उसी प्रजाति के रोगग्रस्त पौधों को निकालते रहना चाहिए।

कटाई, मढ़ाई तथा प्रसंस्करण

जब फलियाँ पीली, सुनहरी, भूरी पड़ जायें तथा फली में दाने का रंग लाल हो जाये तो फसल को काट लेना चाहिए। काटने के बाद अच्छी प्रकार सुखाकर ट्रैक्टर चलाकर अथवा थ्रेशर की सहायता से बीज को अलग करके पंखे से साफ करके बीज को अच्छी तरह सुखाने के बाद बीज की ग्रेडिंग करनी चाहिए। थ्रेसिंग, ग्रेड़िंग करते समय मशीनों को अच्छी प्रकार साफ करना चाहिए ताकि किसी प्रकार बीज में मिश्रण की सम्भावना न रहे। सरसों की बीज को सुखाना भी अत्यंत आवश्यक है अन्यथा नमी कारण बीज में फंगस लग जाती है जिसके कारण बीज की गुणवत्ता गिर जाती है। प्रसंस्करण करते समय जाली का आकार बीज के आकार पर निर्भर करता है। सामान्यत: बारीक दाने वाली प्रजातियों के लिए नीचे की जाली का आकार 1.8 मि.मी. तथा मोटे दाने वाली प्रजातियों के लिए 2 मि.मी. से कम नहीं होना चाहिए। गेड़िंग करते समय हवा के दबाव का भी ध्यान रखना चाहिए। ग्रेडिंग के बाद बीज को 2.5 ग्राम थायरम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करने के बाद सामान्यत: 1.5 कि.ग्रा. के आकार के थैलों में पैक करके रखना चाहिए । थैलियों पर टैग अवश्य लगाना चाहिए तथा टैग के ऊपर प्रजाति का नाम, फसल का नाम, लॉट

सरणी 3. सरसों उत्पादन का आर्थिक विश्लेशण (रूपये प्रति हेक्टेयर)

विवरण	मात्रा एवं दर	अगेती प्रजातियाँ		समयानुसार प्रजातियां	
		बीज उत्पादन	सरसों उत्पादन	बीज उत्पादन	सरसों उत्पादन
पलेवा	श्रमिक सहित प्रति	1450	1450	1450	1450
खेत की तैयारी	एक बार हैरी दो बार कल्टीवेटर	5200	5200	5200	5200
बीज की मात्रा	4.5 किग्रा.प्रजनक,प्रमाणित	506	450	506	450
बीज की बुवाई	सीडड्रिल द्वारा श्रर्मिक सहित	1350	1350	1350	1350
खरपतवारनाशी	स्टाम्प 3ली. रू 450 प्रति ली.	1700	1700	1700	1700
उर्वरक	डी ए पी, यूरिया,क्यूरेट ऑफ पोटाश तथा सल्फर (क्रमश 100:150:50:25 किग्रा.)	7000	7000	7000	7000
निराई गुड़ाई	कसोले द्वारा एक बार	5000	5000	5000	5000
सिंचाई	दो सिंचाई रू:1450 प्रति सिंचाई	2900	2900	2900	2900
फसल सुरक्षा	कीटनाशकों का खर्च	2500	2500	2500	2500
रोगिंग	8 श्रमिक रू: 300 प्रति श्रमिक	2400	–	2400	–
कटाई एवं थ्रेसिंग	30 श्रमिक रू: 300 प्रति श्रमिक	9000	9000	9000	9000
ग्रेडिंग तथा पैकिंग	अगेति 16 कुन्तल समय से 22 कुन्तल	2560	–	3520	–
अन्य खर्च	भूमि का लगान आदि समय अवधि के अनुसार	4500	4500	4500	4500
कुल खर्च	बीज तथा सरसों उत्पादन में	46066	41050	46066	41050
बीज से आय	अगेती 14.5 कुन्तल,समयानुसार 20.5 कुन्तल	87000	–	123000	–
कटग्रेन से आय	1.5 कुन्तल	3000	–	3000	–
सरसों उत्पादन (दाना)	अगेति 16 कुन्तल, समयानुसार 22 कुन्तल	–	64000	–	88000
कुल आय	बीज तथा सरसो (ग्रेन) से	90000	64000	126000	88000
शुद्ध आय	कुल आय-कुल खर्च	43934	22950	79934	46950
प्रतिदिन आय	अगेति 115 दिन, समयानुसार 140 दिन	382	200	571	335

नं. अंकुरण 85 प्रतिशत भौतिक शुद्धता 98 प्रतिशत, अंकुरण की तिथि, अंकुरण की वैद्यता की तिथि, बीज का वजन तथा उत्पादक (संस्थान) का नाम अवश्य लिखा होना चाहिए।

ऊपज तथा आय व्यय का विवरण

सरसों की अगेति प्रजातियां 14-16 क्विंटल तथा समय से बोई जाने वाली प्रजातियाँ 20-25 क्विंटल प्रजातियों के अनुसार औसतन पैदावार देती हैं। सरसों की उन्नत प्रजातियों का बीज उत्पादन करके सरसों की उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है तथा विदेशों से खाद्य तेलों का कम आयात करके विदेशी मुद्रा बचाई जा सकती है। बीज उत्पादक बीज पैदा-करके अधिक लाभ भी अर्जित कर सकते हैं जो सारणी 3 में दर्शाया गया है।

□□□

ग्लैडियोलस की उन्नत शस्य तकनीकें

भैंरू लाल कुम्हार, महेश कुमार पूनियां, महेन्द्र सिंह एवं अनिल कुमार शर्मा
कृषि विज्ञान केन्द्र, बोरखेड़ा, कोटा

ग्लैडियोलस एक लोकप्रिय सजावटी पौधाा है। यह विभिन्न आकार और बड़े आकर्षक रंगों में पाया जाता है। ग्लैडियोलस के फूल कमरे की सजावट के अनुरूप 8 से 10 दिन तक फूलदान में रखे जा सकते हैं। पुष्पगुच्छों और पुष्पसज्जा में ग्लैडियोलस अनिवार्य रूप से रखा जाता है। इसका वानस्पतिक नाम ग्लेडियोलस स्पी. है, जो दइरीडियेसी परिवार के अन्तर्गत आता है।

ग्लैडियोलस की खेती और इसका राष्ट्रीय महत्व

देश के 11,660 हेक्टेयर क्षेत्र में ग्लैडियोलस की खेती की जाती है। एक अनुमान के अनुसार 106 करोड़ कट-फूलों का उत्पादन किया जाता है। कट-फूलों की खेती में क्षेत्र और उत्पादन की दृष्टि से ग्लैडियोलस का स्थान तीसरा है। उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, ओडीशा, छत्तीसगढ़, हरियाणा और महाराष्ट्र देश के प्रमुख ग्लैडियोलस उत्पादक राज्य हैं। उत्तराखंड, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश और सिक्किम में भी इसकी खेती की जाती है। हालांकि ग्लैडियोलस एक शीतकालीन फूल उत्पाद है लेकिन मध्यम जलवायु में भी साल भर इसकी खेती की जाती है।

ग्लैडियोलस खेती की तकनीकी आवश्यकताएं

जलवायु

विभिन्न जलवायु में ग्लैडियोलस की खेती की जा सकती है। 465 से लेकर 2500 मी. तक के पहाड़ी इलाकों में इसकी खेती की जा सकती है। ग्लैडियोलस के बढ़ने और फलने में जलवायु की महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्लैडियोलस की सफल खेती के लिए मध्यम जलवायु उचित है। बहुत ज्यादा गरम या बहुत ज्यादा सर्दी इसकी खेती के लिए नुकसानदायक है। ग्लैडियोलस के लिए धूप उपयुक्त है इसकी खेती छाया में नहीं की जानी चाहिए। इसकी अच्छी तरह से बढ़ने और फूलने के लिए कम-से-कम 80 प्रतिशत सूरज की रोशनी की जरूरत होती है। लगातार उमस इसके लिए उपयुक्त नहीं, इससे रोगाणु आकर्षित होते हैं।

मृदा

ग्लैडियोलस की खेती मामूली रेतीली से लेकर भरपूर मिट्टी तक विविध प्रकार की मृदा में की जा सकती है। तथापि, (कम से कम 30 से.मी.) हवादार जैविक पदार्थो से भरपूर मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त है। 5.5 से 6.5 के बीच अम्लता होनी चाहिए। यदि मिट्टी हलकी और रेतीली हो तो पर्याप्त मात्रा में सदा जैविक खाद देना चाहिए और भारी मिट्टी में रेतीली मिट्टी मिलाई जा सकती है।

मृदा तैयार करना

पौधों को लगाने के दो महीने पहले 30 से.मी. गहराई तक जुताई कर छोड़ दिया जाता है। पौधों को लगाने के

दो-तीन सप्ताह पहले दूसरी बार जुताई की जाती है और इसके बाद एक बार जमीन को समतल बनाया जाता है। जमीन को अच्छी तरह से समतल बनाने और सिंचाई के लिए खेत को छोटे-छोटे हिस्सों में बांटा जाता है। अतिरिक्त जल की निकासी के लिए नलिकाएं भी तैयार की जाती है।

उन्नत किस्में

पंजाब डान, सी.एस.जी, गुंजन,सी.एस-2, अर्चना, बसन्त बहार, गजल, ज्वाला, मनहर, मनीषा, मनमोहन,मोहिनी, मुक्ता, पिताम्बर, सामता, त्रिलोकी, अल्देबरन, फ्रैण्डशिप, आरती, अप्सरा, मीरा, मुनम, समपना, शोभा, ग्रोक, जक्सनविले गोल्ड तथा व्हाइट गोडेन, राजस्थान में उगाने के लिए उपयुक्त है।

रोपण सामग्री

ग्लेडियोलस का प्रवर्धन इसके भूमिगत जड़नुमा कॉर्म और कॉर्ममेल से किया जाता है। एक साल के कॉर्म सामान्यत: बडे छोटे आकार के होते हैं और इससे कोई फूल उत्पन्न नहीं हो पाते। दो-एक फूलों के मौसम वाले कॉर्म से फूल उत्पन्न हो सकते हैं। सामान्यत: इनके व्यास के आकार पर कॉर्मो का वर्गीकरण किया जा सकता है। कॉर्म का आकार, फूलों, बाली, इसकी लम्बाई को प्रभावित करता है। सपाट कॉर्म की तुलना में मध्यम आकार के कॉर्म अच्छे होते हैं। पुष्पण के लिए 2.5 से. मी. और इससे बड़े कॉर्म पौधे लगाने के काम आते हैं और छोटे कॉर्म इनकी वृद्धि के लिए काम आते हैं। इसलिए रोपण के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले पर्याप्त आकार वाले रोगाणुरहित कॉर्म का ही उपयोग किया जाना चाहिए।

पौध रोपण

ग्लैडियोलस को मेड़ और खुड़ प्रणाली से लगाया जाता है। दो मेडों में 30 से.मी. की दूरी रखी जाती है और मेंड़ और कॉर्म के बीच 15 सेमी. की दूरी रखी जाती है। खेत के आकार और खेत में अंतर-फसल को ध्यान में रखते इनका रोपण किया जाता है। पहले से तैयार किए गए मेंड़ों में रोपण करने के बजाए रोपण करने के बाद भी सतह पर रोपण किया जा सकता है। ऐसे मामलों में बाद में और मिट्टी डालना जरूरी हो जाता है। इस दूरी के साथ एक हैक्टर क्षेत्र में 20,000 कॉर्म लगाए जा सकते है।

रोपण का मौसम

सामान्यत: ग्लैडियोलस का रोपण सर्दियों में किया जाता है। फिर भी, अत्यधिक गर्मी के दिनों को छोड़ मध्यम जलवायु में सालभर इसकी खेती की जा सकती है। छोटे-छोटे अंतराल में रोपण करने से साल भर फूलों का उत्पादन संभव है। ऐसा करने से दो साल में किसान को ग्लैडियोलस की तीन फसल मिल सकती हैं। फिर भी, वर्तमान योजना में एक साल में एक फसल का अनुमान किया गया है।

रोपण की गहराई

कॉर्म एक पंक्ति में लगाए जाते हैं और इसे मिट्टी से ढंक दिया जाता है। कम गहराई से रोपण करने पर अधिक कॉर्म का उत्पादन संभव है लेकिन ज्यादा हवा वाले क्षेत्र में इनके उखड़ जाने की संभावना होती है। 7-10 सेमी. गहरी रोपण उचित है।

खाद एवं उर्वरक

पुष्पोत्पादन और कॉर्म विकास दोनों के लिए जैव खाद देना अत्यंत आवश्यक है। फिर भी, बहुत त्यादा खाद नहीं देना चाहिए। इससे फूलों के आकार और फूलों की डालियों (स्पाइक) की लम्बाई पर प्रभाव पड़ता है। एक हैक्टर जमीन में गोबर की खाद 25 मेट्रिक टन और 12 किलोग्राम जस्ता (जिंक) दिया जाता है।

सिंचाई

रोपण के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए ताकि अंकुरण तक पानी देने की जरूरत न पड़े। जलवायु और मिट्टी के अनुसार सिंचाई की आवश्यकता बदलती

है। गर्म हवामान होने की स्थिति में सप्ताह में दो बार पानी दिया जा सकता है। ठंड में सप्ताह में एक बार पानी दिया जा सकता है। फसल कटाई के बाद पानी देना कम करना चाहिए। जलवायु के अनुसार कॉर्म निकालने से कम-से-कम 4-7 दिन पहले पानी दिया जाना चाहिए। इससे कॉर्म निकालने में सुविधाा होती है।

अंतर खेती

रिज एण्ड़ फरो प्रणाली में रोपण की जाने पर जब डाली 20 सेमी तक बढ़ती है तो पौधों को सीधे रखने और कॉर्म बाहर न आने के लिए मिट्टी भरी जा सकती है। सतही रोपण प्रणाली (सरफेस प्लांटिंग सिस्टम) में चौथे पत्ते के आने तक मिट्टी दी जा सकती है। सामान्यत: दो पत्ते और चार पत्ते आने तक छंटाई की जा सकती है। पास-पास रोपण करने से स्टेकिंग की जरूरत पड़ती है। फिर भी जब भी जरूरत पड़े, स्टेकिंग जरूर करें।

पौध-सुरक्षा

सामान्यत: नियंत्रण के लिए माहूं (एफिड), कीट (थ्रिप्स), कट वर्म्स, बरूथी (माइट), बीज-फार्म मैगट पौधों पर हमला करते हैं और अच्छा-खासा नुकसान पंहुचाते हैं। इनके 0.2 प्रतिशत सेविन/मालाथियोन, क्लोरोपाईरिफोस प्रभावशाली साबित हुआ है। फ्यूजेरियम, रॉट, स्पांजी रॉट, नेक रॉट, लीफ स्पॉट और वाइरस रोग ग्लेडियोलस में आम है। फफंदी रोग रिडोमिल, केप्टान, बाविस्टीन आदि के उपयोग से नियंत्रित किए जा सकते है। वाइरस रोग नियंत्रण के लिए प्रभावित पौधों को जड़ से अखाड़ कर इन्हें नष्ट करना चाहिए।

स्पाइक की फसल और कॉर्म उठाना

पौधों की किस्म के आधार पर रोपण के बाद 60-120 दिन के बाद स्पाइक काटे जा सकते हैं। रंगीन एक से चार फूलों वाले स्पाइक सख्त कलियों के साथ ही काटे जाने चाहिए और कॉर्म तथा कॉर्मवेल के लिए पौधों में कम-से-कम चार पत्ते जरूर होने चाहिए। यदि सिंतबर के महीने में कॉर्म लगाए जाते हैं तो नवंबर/दिसंबर से जनवरी/फरवरी तक फसल काटी जा सकती है। पौधे/स्पाइक की प्रगति बाजार दाम, मांग आदि के आधार पर स्पाइक कटाई की जा सकती है। लगभग 25 प्रतिशत कॉर्ममेल भूरे पड़ने के बाद पत्तों के पीले पड़ जाने पर कॉर्म परिपक्व होने के बाद कॉर्म उठाए जाते है। फूल खिलने से कॉर्म परिपक्व होने में डेढ-दो महीनों का समय लगता है।

पैदावार

खेती, कॉर्म आकार, पौधा-रोपण की गहनता और अपनाई गई प्रबंधन प्रथा के आधार पर गलैडियोलस स्पाइक और कॉर्म की पैदावार होती है। पैदावार का मानदंड निम्नानुसार आकलित किया गया है :

स्पाइक पैदावार: एक स्पाइक प्रति पौधाा

कॉर्म पैदावार: रोपण आधार का एक कॉर्म और कॉर्ममेल प्रति पौधा तदनुसार एक हैक्टर जमीन में लगभग 20,000 स्पाइक की पैदावार हो जाती है। तथापि, इस मॉडल में केवल 90 प्रतिशत स्पाइक बिक्री योग्य होते हैं। किस्म, रोपण की गहराई आदि के आधार पर कॉर्ममेल की पैदावार 3.5 से 67.0 क्विं. प्रति हैक्टर तक हो जाती है। हालांकि, कॉर्ममेल की रू. 300 तक प्रति किलो की दर से बिक्री की जाती है।

फसलोत्तर कार्य

फूल: काटे गए स्पाइक तत्काल पानी में रखने चाहिए और पैकिंग के समय ही उन्हें निकालना चाहिए। स्पाइक काटने के बाद उनकी लम्बाई, फूलों की संख्या के आधार पर उनकी छंटनी की जानी चाहिए। इसी आधार पर उत्तर अमरीकी परिषद ने स्पाइक की निम्नलिखित श्रेणियां बनाई हैं :

क्र.सं.	ग्रेड	लंबाई (सेमी)	फूलों की संख्या
1.	फैंसी	107 से अधिक	16
2.	विशिष्ट	96 से अधिक 107 तक	15
3.	मानक	81 से अधिक 96 तक	12
4.	उपयोगी	81 से कम	10

घरेलू बाजार के लिए स्पाइक को तीन श्रेणियों 'क', 'ख', 'ग' में रखा गया है। ग्रेडिंग के बाद 12 या 24 स्पाइक के बंडल बना कर पैकिंग पेपर और प्लास्टिक बैंड से बाधे जा सकते हैं। सामान्यत: सख्त कार्डबोर्ड के बक्सों में स्पाइक को पैक किया जाना चाहिए लेकिन वस्तुत: इन्हें पेपर में पैक कर टाट के बोरे में भर दिया जाता है। ट्रांसपोर्ट करते समय 60 दर्जन स्पाइक के बंडल बनाए जाते हैं। फूलदान में ज्यादा वक्त बनाए रखने के लिए फूलदाने में पानी में रखा जाता है और एक दिन छोड़ (हर तीसरे दिन) स्पाइक के निचले हिस्से को जरा-सा-1.5 सेमी काटा जाता है।

कॉर्म: कॉर्म निकाले जाने के बाद साफ किया जाता है और छांव/हवादार स्थान पर इन्हे 15 दिन रख दिया जाता है। सामान्यत: कॉर्म 2-3 महीने तक निष्क्रिय रहते है।। इसके बाद इनमें अंकुर फूटते है। अंकुरण और सूखने से बचने के लिए इन पर फफूंदीनाशक का छिड़काव किया जा सकता है।

□□□

दलहनी फसलों में उर्वरकों का प्रयोग

आलोक कुमार[1], के.के. वर्मा[2] एवं सुरेन्द्र राम[3]

[1]सह-प्राध्यापक (मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग)

[2]विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), प्रसार निदेशालय

[3]विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, चन्दौली, न.दे.कृ. एवं प्रौ.वि.वि., फैजाबाद

हमारे भोजन में दालों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें पायी जाने वाली प्रोटीन से शरीर की रचना होती है। वैसे तो भोजन में शामिल सभी वस्तुओं में कुछ न कुछ मात्रा में प्रोटीन पायी जाती हैं परन्तु दालों में प्रोटीन की मात्रा गेंहूँ, चावल, जौ, मक्का आदि से लगभग तीन गुना अधिक होती है। अत: शाकाहारी भोजन में पोषण के दृष्टिकोण से दालों का शामिल होना अत्यन्त आवश्यक है। हमारे देश में जहाँ बहुत लोगों की आर्थिक दशा दयनीय होने के कारण लोग प्रोटीन के महंगे श्रोतों जैसे माँस, मछली, अण्डा, दूध, दही आदि का नियमित सेवन नहीं कर पाते वहीं कुछ धनी लोग भी धर्मिक वर्जनाओं की वजह से इन श्रोतों का उपयोग नहीं करते, भोजन में दालों का महत्व अन्य देशों की अपेक्षा हमारे देश में अधिक हो जाता है। हमारा दुर्भाग्य है कि दालों की इतनी आवश्यकता होते हुये भी हम दालों की उचित मात्रा अपने नित्य भोजन में शामिल नहीं कर पा रहे हैं। प्रति व्यक्ति प्रतिदिन हमें औसत 50 ग्राम मात्र दाल मिल पाती है जबकि हमारी दैनिक आवश्यकता 110 ग्राम प्रति व्यक्ति है। इसका मुख्य कारण दलहन की कम उपज होना है। हमारे देश में दलहनी भूमि का क्षेत्रफल तो हमारी आवश्यकता से अधिक है परन्तु प्रति हेक्टेयर पैदावार औसत 10-15 कुन्तल है। कम पैदावार इसलिये प्राप्त होती है कि दलहन को हम कम उपजाऊ भूमि में उन क्षेत्रों में उगाते है, जहाँ पानी की कमी होती है। सिंचित एवं उपजाऊ भूमियों में दलहन की खेती किसान बहुत ही कम क्षेत्रफल में करते हैं। इसके अलावा विभिन्न दलहनों की अच्छी प्रजातियाँ पहले उपलब्ध नहीं थी परन्तु अब उपलब्ध है, उनका उपयोग किसान नहीं कर पाते हैं। नई तकनीकी जानकारी भी किसानों को नहीं है। इन सब कारकों के अतिरिक्त एक अन्य अहम मुद्दा है दलहनों में खाद एवं उर्वरक प्रयोग का। एक तो दालें अधिकतर असिंचित क्षेत्रों की कम उपजाऊ भूमि पर उगायी जाती हैं, साथ ही साथ उनमें खाद एवं उर्वरकों की मात्रा भी नहीं के बराबर प्रयोग की जाती है। परिणाम होता है बहुत कम पैदावार। अत: अधिक पैदावार के लिये खाद एवं उर्वरकों का उचित प्रबन्ध अति आवश्यक है।

हल्की भूमियों से दलहन की अधिक उपज प्राप्त करने के लिये 15-20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से जीवाँश खादें जैसे कम्पोस्ट, गोबर की खाद आदि का प्रयोग करना चाहिए। इन भूमियों में बहुत से पोषक तत्वों की कमी होती है जो इन खादों के प्रयोग से दूर हो जाती हैं। इसके अलावा रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग सभी प्रकार की भूमियों में करना आवश्यक है। अब प्रश्न इस बात का है कि किसान भाई कौन-कौन से उर्वरकों का प्रयोग कितनी मात्रा में कब और कैसे करें। चूंकि दलहनी फसलों की जड़ों में छोटी-छोटी गाँठों में नत्रजन स्थिर करने वाले शाकाणु रहते हैं, जो फसलों की

आवश्यकतानुसार नत्रजन वायुमण्डल से भूमि में जमा कर लेते हैं। अत: इन फसलों को नत्रजन वाले उर्वरकों की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। केवल प्रारम्भ में जब तक गाँठे नहीं बन पाती हैं 10-20 किग्रा. प्रति हेक्टेयर नत्रजन यूरिया या डी.ए.पी. के रूप में देना आवश्यक होता है। दलहनी फसलों को सबसे अधिक आवश्यकता फॉस्फोरस की पड़ती है। दलहन के प्रकार के हिसाब से यह मात्रा 40-80 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग की जाती है। प्राय: किसान फॉस्फोरस के लिये डी.ए.पी. का ही प्रयोग करते हैं। परन्तु डी.ए.पी. के स्थान पर सिंगल सुपर फॉस्फेट का प्रयोग करें तो अधिक लाभदायक सिद्ध होगा, क्योंकि इससे गंधक एवं सूक्ष्म तत्व भी पाये जाते हैं। कुछ स्थानों पर भूमि में पोटाश की कमी हो तो 20-30 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से पोटाश-उर्वरक डालने चाहिए।

दलहनी फसलों को फॉस्फोरस के अतिरिक्त गंधक की भी आवश्यकता होती है। अब तक भूमियों में गंधक की कमी नहीं थी परन्तु अब लगातार फसल लेने से तथा गंधक का प्रयोग न करने से कहीं-कहीं गंधक की कमी के लक्षण फसलों पर दिखाई देने लगे हैं। अत: जिन भूमियों में गंधक की कमी हो वहाँ दो से ढाई कुन्तल प्रति हेक्टेयर के हिसाब से पाइरॉइट का प्रयोग करें। कुछ दलहनी फसलों में बलुई या हल्की भूमियों में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। अत: यदि भूमि में जीवाँश खाद का प्रयोग न किया गया हो तो 15-20 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से जिंक सल्फेट का प्रयोग हर तीसरे साल करना श्रेयस्कर रहता है।

खाद एवं उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण किसी विशेष फसल के लिये मृदा परीक्षण के आधार पर ही करें। दलहनी फसलों के लिये जो भी खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करें वह बुवाई से पहलें ही करें। उर्वरकों को भूमि में 10-12 से.मी. गहराई पर डालना अच्छा रहता है क्योंकि इसे पौधे आसानी से उपयोग कर सकते हैं। कुछ मुख्य दलहनी फसलों के लिये उर्वरकों की मात्रा किग्रा. प्रति हेक्टेयर इस प्रकार है-

मृदा परीक्षण के आधार पर गंधक एवं जिंक की कमी प्राप्त हो तभी पाइरायट तथा जिंक सल्फेट का प्रयोग करें। पाइरॉइट का प्रयोग फसल की बुवाई से लगभग एक सप्ताह पूर्व करें तकि गंधक फसलों को आसानी से मिल सकें। जो किसान भाई किसी कारणवश मृदा-परीक्षण करने में असमर्थ रहें, वह सभी दलहनी फसलों के लिये एक कुन्तल प्रति हेक्टेयर की दर से डी. ए.पी. को 10-12 से.मी. की गहराई पर फसल की बुवाई से पहले डालें।

इस प्रकार किसान उर्वरकों का प्रयोग कर दलहनी फसलों के पैदावार में वृद्धि कर सकते हैं।

क्रमांक	फसल का नाम	उर्वरक की मात्रा (किग्रा./हे.)			
		नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटाश	जिंक सल्फेट
1.	अरहर	20-25	50-65	30	15-20 (तीसरे वर्ष)
2.	मूँग	15-20	50	-	15-20 (तीसरे वर्ष)
3.	उर्द	15-20	60	-	-
4.	चना	15-20	50	-	-
5.	मटर	15-20	50	20-30	15-20 (तीसरे वर्ष)
6.	मसूर	20	45	-	-

□□□

टमाटर का मूल्य संवर्धन

वर्षा सिंह[1], माधवी सिंह[2], कमलेश कुमार सिंह[3] एवं कन्हैया सिंह[4]

[1]एस.एम.एस. दीन दयाल शोध संस्थान, कृषि विज्ञान केंद्र, मझगवां सतना, म.प्र.

[2]फूड टेक्नोलाजी विभाग, ए के एस विश्वविद्यालय, सतना, म.प्र.

[3]कृषि अर्थशास्त्र संभाग, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

[4]फल व उद्यान तकनीकी संभाग, भा.कृ.अनु.प–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

टमाटर एक लोकप्रिय तथा पोषक तत्वों से युक्त फलदार सब्जी है। इसकी उत्पति मैक्सिको और पेरू में हुई मानी जाती है। टमाटर विश्व में सबसे ज्यादा प्रयोग होने वाली सब्जी है। इसका पुराना वानस्पतिक नाम लाइकोपोर्सिकॉन एस्कुलेंटम मिल है। वर्तमान समय में इसे सोलेनम लाइकोपोर्सिकॉन कहते हैं। मेक्सिको में इसका भोजन के रूप में प्रयोग आरम्भ हुआ और अमेरिका के स्पेनिस उपनिवेश से होते हुये विश्वभर में फैल गया। सम्पूर्ण भारत में इसे व्यापारिक स्तर पर उगाया जाता है। भारत में टमाटर का कुल क्षेत्रफल 83,000 हेक्टर है जिसमें 7,90,000 टन उत्पादन होता है। फल पोषक तत्वों में भरपूर होता है। इसमें आयरन, फॉस्फोरस, विटामिन–ए, तथा सी भरपूर मात्रा में पाया जाता है। टमाटार के फल से केचप, सॉस, चटनी, सूप रस पेस्ट आदि परिरक्षीत पदार्थ तैयार किए जाते हैं। फलों को काट कर सुखाया भी जाता है। पके हुए फलों में संग्रहण क्षमता अत्यन्त ही कम होती है। यह अनेक प्राकृतिक अम्लों से पूर्ण होने के कारण पाचन तंत्र के लिए अत्यन्त ही लाभदायक है। टमाटर सुस्त यकृत को उत्तेजित कर पाचक रसों के स्रवाण में सहायक होता है। रक्त शोधन, अस्थमा और ब्रोन्काइटिस और पित्त्त विकार में भी टमाटर उपयोगी है। मृदु रेचक आंतों के लिए प्रति जीवाणु, शरीर के सामान्य शुद्धिकरण के लिए गुर्दे के कार्यो में भी सहायक होता है। टमाटर की फसल अवधि 60 से 120 दिन होती है। पौधे रोपण के 2 से 3 माह पश्चात् फल तैयार हो जाते हैं। मुख्य फलन दिसम्बर–जनवरी में प्राप्त होती है। वर्षा ऋतु तथा ग्रीष्म ऋतु में भी फलन ली जा सकती है। प्रति हेक्टर 250 से 320 क्विंटल फल प्राप्त होते हैं। उपज किस्म तथा ऋतु के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है।

टमाटर का स्वाद अम्लीय (खट्टा) होता है, लेकिन यह शरीर में क्षारीय (खारी) प्रतिक्रियाओं को जन्म देता है। लाल–लाल टमाटर देखने में सुन्दर और खाने में स्वादिष्ट होने के साथ पौष्टिक होते हैं। इसके खट्टे स्वाद का कारण यह है कि इसमें साइट्रिक एसिड और मैलिक एसिड पाया जाता है जिसके कारण यह प्रत्यम्ल (एंटासिड) के रूप में काम करता है। टमाटर में विटामिन 'ए' काफी मात्रा में पाया जाता है।

मानव शरीर के लिए टमाटर बहुत ही लाभकारी होता है। इससे कई रोगों का निदान होता है। टमाटर शरीर से विशेषकर गुर्दे से रोग के जीवाणुओं को निकालता है। यह मुत्र में चीनी के प्रतिशत पर नियन्त्रण पाने के लिए प्रभावशाली होने के कारण यह मधुमेह के रोगियों के लिए भी बहुत उपयोगी होता है। कार्बोहाइड्रेट की मात्रा कम होने के कारण इसे एक उत्तम भोजन माना जाता है। टमाटर से पाचन शक्ति बढ़ती है। इसके लगातार सेवन से जिगर बेहतर ढँग से काम करता है और गैस की

शिकायत भी दूर होती है। जो लोग अपना वजन कम करने के इच्छुक हैं, उनके लिए टमाटर बहुत उपयोगी है। एक मध्यम आकार के टमाटर में केवल 12 कैलोरीज होती है, इसलिए इसे पतला होने के भोजन के लिए उपयुक्त माना जाता है।

टमाटर हमारे देश में प्रचुर मात्रा में पैदा होता है प्राय: यह देखा गया है कि मौसम में इनकी उपज का कुछ न कुछ भाग अवश्य नष्ट हो जाता है। टमाटर एक शीघ्र नष्ट होने वाली सब्जी की फसल है जिसको रख रखाव की क्षमता कुछ हद तक किस्मों में हस्तक्षेप करके बढ़ाई जा सकती है। भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान बंगलोर द्वारा संकर किस्म 'अर्का रक्षक' निकाली गयी है जिसकी रख रखाव की क्षमता अधिक है। संस्थान ने टमाटर की ये नई किस्म जो विकसित की है, उसके एक पौधे से 19 किलो टमाटर का उत्पादन हुआ है जहां कर्नाटक में टमाटर का प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन 35 टन है वहीं 'अर्का रक्षक' प्रजाति की टमाटर का उत्पादन प्रति हेक्टेयर 190 टन तक हुआ है।

ये महज उच्च उपज देने वाली प्रजाति ही नहीं है बल्कि टमाटर के पौधों में लगने वाले तीन प्रकार के रोग पत्तियों में लगने वाले कर्ल वायरस, जिवाणु विल्ट और फसल के शुरूआती दिनों में लगने वाले जिवाणु विल्ट से सफलतपूर्वक लड़ने की भी इनमें प्रतिरोधक क्षमता मौजूद हैं। इससे कवक और कीटनाशकों पर होने वाले खर्च की बचत से टमाटर की खेती की लागत में दस फीसदी तक की कमी आती है।

इसके साथ ही, टमाटर की इस किस्म की खेती के कुछ अन्य फायदे भी हैं। मसलन इसके गहरे रंग की वजह से इन टमाटरों को अधिक दूरी तक ट्रांसपोर्ट के जरिए भेजने में आसानी होती है। अन्य सामान्य प्रजातियों के टमाटरों की उपज के बाद छह दिनों तक रखा जा सकता है, संकर प्रजाति के टमाटर दस दिनों तक जबकि अर्क प्रजाति के टमाटर पंद्रह दिनों तक आसानी से किसी अन्य प्रयास के रखे जा सकते हैं।

टमाटर एक शीघ्र नष्ट होने वाली सब्जी की फसल है। इसको 10 दिन तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है। मौसम में उपलब्ध अधिक मात्रा में टमाटर को संरक्षित करके इसकी क्षति को राका जा सकता है व् इसके स्वाद का पूरे वर्ष उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार संरक्षित पदार्थों द्वारा घर की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है।

टमाटर के सरंक्षित पदार्थ अत्यंत लोकप्रिय हैं, टमाटर से निर्मित कतिपय सरंक्षित पदार्थ निम्न लिखित हैं:

1. टमाटर का रस
2. टमाटर का सूप
3. टमाटर का कैचप
4. टमाटर की चटनी
5. टमाटर की डिब्बाबंदी

सामान्यत: टमाटर की दो फसलें होती हैं - शरदकालीन तथा ग्रीष्मकालीन। ग्रीष्मकालीन टमाटर की अपेक्षा शरदकालीन टमाटर संरक्षण की दृष्टि से अधिक अच्छा होता है। इसके दो कारण हैं - शरदकालीन टमाटर का रंग गहरा लाल होता है तथा यह अधिक गाढ़ा होता है।

टमाटर का रस

फल का चुनाव: भली-भांति पके हुए गहरे लाल रंग के फलों को चुन लीजिए। कच्चे, सड़े-गले तथा फफूंदग्रस्त फलों का कदापि प्रयोग नहीं करना चाहिए। बहुत अधिक गले हुए टमाटरों का रस पतला होता है तथा उनमें स्वाद व गंध की भी कमी हो जाती है।

धुलाई: भूमि के निकट पैदा होने के कारण टमाटरों में कीटाणु की संख्या भी अधिक होती है, अत: फलों को साफ पानी से धोना चाहिए।

रस निकालना: सर्वप्रथम डंठल तथा हरे भाग को निकाल देना चाहिए। फिर फलों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेना चाहिए। कटे हुए फलों को इतना पका लीजिए

कि फल भली-भांति गल जाएं। पकाते समय कटे हुए फल को लकड़ी के चम्मच से चलाते रहना चाहिए जिससे फल पतीले के पेंदे पर न लग जाए। अब एल्युमीनियम अथवा स्टेनलेस स्टील की महीन छलनी लेकर उबले हुए फलों को छलनी के ऊपर रगड़ कर छान लीजिए। इस क्रिया से बीज तथा छिलके छलनी के ऊपर ही रुक जाते हैं तथा फल का गूदा छन जाता है। छलनी के ऊपर उबले हुए फल को स्टेनलेस स्टील की समान पेंदे वाली कटोरी से रगड़ना सुगम होगा। छलनी के अभाव में मसहरी के कपड़े द्वारा भी रस छानने का यह कार्य सम्पन्न किया जा सकता है।

बिना उबले हुए टमाटरों से भी रस निकाला जा सकता है लेकिन पका कर रस निकालने से कतिपय लाभ है जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है:

1. रस उत्पादन अधिक होता है।
2. रंग प्रदान करने वाले पदार्थ पकाने से अधिक मात्रा में रस में आ जाते हैं।
3. पकाने से फल से अधिक मात्रा में पेक्टिन प्राप्त होती है और रस अधिक गाढ़ा तैयार होता है, और
4. पकाने से टमाटर में निहित एंज़ाइम नष्ट हो जाते हैं जिससे रस में होने वाले अवांछनीय दुष्प्रभाव कम हो जाते हैं।

नमक तथा शक्कर मिलाना

रस में अपेक्षित मात्रा में नमक तथा शक्कर मिलाने से उसके स्वाद में वृद्धि हो जाती है। नमक तथा शक्कर किस प्रमाण में मिलाये जायें, यह व्यक्तिगत पसन्द पर निर्भर है। नमक तथा शक्कर मिलाने का एक नुस्खा निम्नलिखित है :

टमाटर का रस	1 कि.ग्रा.
नमक	19 ग्राम
शक्कर	14-18 ग्राम

भरना

रस बोतलों अथवा डिब्बों में सुरक्षित रखा जाता है। यह अनुभव किया गया है कि बोतलों की अपेक्षा डिब्बों में सुरक्षित रस रंग, स्वाद तथा सुगंध की दृष्टि से श्रेष्ठ होता है।

डिब्बों में भरना: रस को लगभग $79-74^0$ से. तक गरम करने के उपरांत सादे डिब्बों में चोटी तक भर कर उन्हें तुरन्त बंद कर लीजिए। अब डिब्बों को खौलते हुए पानी में डालकर अपेक्षित समय तक गरम करें जिससे उनके कीटाणु नष्ट अथवा निष्क्रिय हो जाएं। डिब्बों को इसलिए ए-1/1 डिब्बों के लिए 29 मिनट तक एक पौंड बटर साइज डिब्बों के लिए 14 मिनट का समय पर्याप्त होगा। इस क्रिया के बाद डिब्बों को ठंडा कर लेना चाहिए।

अब एक भगोने में पानी गरम होने रख दें तथा भगोने के पेंदे में कपड़े की मोटी गद्दी बिछा दें। इसे नकली पेंदा, (फॉल्स बॉटम) कहते हैं। जब भगोने के पानी का तापमान 64^0 से. हो जाए तो रस से भरी बोतलों को इस पानी में गद्दी के ऊपर लिटाकर रख दें। इस तापमान पर बोतलों को 26 मिनट तक गरम करने के बाद उन्हें हवा में ठंडा होने रख दें।

टमाटर का सूप

पाश्चात्य देशों में भोजन प्राय: सूप से आरंभ किया जाता है। टमाटर का सूप प्राय: सबसे अधिक प्रयोग में लाया जाता है। यह विटामिन ए, बी, तथा सी का अच्छा स्रोत है। नीचे टमाटर से सूप बनाने तथा इसे सुरक्षित करने की विधि बताई जा रही है:

सामग्री: 4 कि.ग्रा. टमाटर का रस, 48 ग्राम महीन कटा हुआ प्याज, 49 ग्राम पिसे हुए गरम मसाले, काली मिर्च, दालचीनी, बड़ी इलायची, फूल रहित लोंग, 4 ग्राम पिसी हुई सोंठ, 49 ग्राम मक्खन, 14 ग्राम अरारोट (स्टार्च), 99 ग्राम शक्कर, 49 ग्राम नमक।

विधि: टमाटर से सूप बनाने के लिए सर्वप्रथम रस तैयार किया जाता है। रस बनाने की विधि का वर्णन पूर्व

अवतरणों में किया जा चुका है। सूप में प्रयुक्त होने वाली सामग्री ऊपर बतलाई गई है, लेकिन इसे स्वाद के अनुसाद कम या अधिक किया जा सकता है।

कटे हुए प्याज तथा मसालों की एक पोटली बना लीजिए और अब एक छोटे पतीले में इतना रस लीजिए कि यह पोटली डूब सके। रस में पोटली को डालकर 14-19 मिनट तक धीमी आंच पर पकाइए। इससे मसालों का अर्क रस में निकल जाएगा।

अब अरारोट को थोड़े से रस में मिलाकर लेई बना लीजिए और फिर शेष रस मिलाकर अरारोट को भली-भांति घोल लीजिए। रस को पकाने के लिए आग पर चढ़ा दीजिए। जब रस कुछ गाढ़ा हो जाए तो पतीली को नीचे उतार लीजिए और इसमें मसालों का सत तथा अन्य सामग्री भी मिला दीजिए।

गरम सूप को टमाटर के रस की तरह बोतलों या डिब्बों में भरा जा सकता है। तापमान 64^0 से. से कम न हो। इस सावधानी से बोतलों में वायु रहने की संभावना नहीं रहती।

कैचप बिना क्राउन कार्क वाली बोतलों में भी भरा जा सकता है। ऐसी बोतलों में साधारण पिथ-कार्क लगाये जा सकते हैं। इस प्रकार रखे हुए कैचप के रंग में परिवर्तन हो जाता है। वैसे गृह उपयोग के लिए इस प्रकार कैचप सुरक्षित रखने में कोई हानि नहीं है।

कैचप में रंग-अनुरक्षण

कैचप के रंग को अत्यधिक आकर्षक और प्राकृतिक बनाने के लिए खाने वाले रंगों का प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन यह अधिक वांछनीय होगा कि टमाटर के प्राकृतिक रंग को अधिक से अधिक बनाए रखने का प्रयत्न किया जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है:

1. कैचप बनाने के लिए गहरे लाल टमाटरों का प्रयोग करना चाहिए। तोड़ कर पकाए गए फसलों की अपेक्षा पेड़ पर पके हुए फलों का रंग अधिक अच्छा होता है। आपने अनुभव किया होगा कि पकने पर टमाटर का रंग सदा एक सा नहीं होता। यह इसलिए होता है कि फल में रंग प्रदान करने वाले तत्व वायुमंडलीय तापमान से प्रभावित होते हैं। 29^0 से. से अधिक तापमान हो जाने पर टमाटर में लाल रंग बनना रुक जाता है तथा पीला रंग बनना प्रारंभ हो जाता है। लाल रंग को लाइकोपिन तथा पीले रंग को कैरोटीन कहते हैं। यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा शरद्कालीन टमाटर में अधिक लाइकोपिन होती है वहां ग्रीष्कालीन टमाटर में कैरोटीन का बाहुल्य होता है।
2. कच्चे टमाटर में हरा रंग (क्लोरोफिल) होता है जो आग पर पकाने से भूरा हो जाता है। अत: स्पष्ट है कि कैचप बनाने के लिए हरे टमाटर का कदापि प्रयोग नहीं करना चाहिए।
3. आपने संभवत: अनुभव किया होगा कि भंडार में रखी हुई कैचप की बोतल की गर्दन पर एक काला घेरा बनने लगता है जो समय के साथ पदार्थ में बढ़ता है। इसे 'ब्लैक-नैक' कहते हैं - अर्थात् बोतल की गर्दन के क्षेत्र में होने वाला कालापन। यह एक रासायनिक प्रक्रिया है जो लोहे, टैनिन तथा वायु की परस्पर क्रिया द्वारा होता है। टैनिन नामक पदार्थ कुछ तो टमाटरों ही में पाया जाता है तथा कुछ मसालों से प्राप्त होता है। लोंग के फूल में यह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है अत: मसाले तैयार करने में लोंग के फूलों को अवश्य निकाल देना चाहिए। लोहे की मात्रा को न बढ़ने देने के लिए लोहे के बर्तन तथा अन्य उपकरणों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वायु को दूर रखने के लिए कैचप को बोतल में गरम-गरम तथा चोटी तक भरना चाहिए। भरते समय कैचप का तापमान $67-69^0$ से. होना चाहिए।
4. मसालों को मोटा-मोटा ही पीसना चाहिए, महीन पिसे हुए मसाले पोटली से निकल कर कैचप में मिल जाते हैं जिससे कैचप देखने में सुंदर नहीं लगता।

5. रस को पकाते समय प्रारंभ में कुल शक्कर का एक तिहाई भाग मिलाना चाहिये। इस परिणाम में डाली गई शक्कर से टमाटर के प्राकृतिक रंग को बनाये रखने में सहायता मिलती है, लेकिन सारी शक्कर को रस के साथ आरंभ से पकाने पर कुछ ऐसे पदार्थ बन जाते हैं जो कैचप के प्राकृतिक रंग लाइकोपिन पर दुष्प्रभाव डालते हैं।

6. नमक के साथ रस को पकाने से भी कैचप के रंग पर दुष्प्रभाव पड़ता है। अत: नमक कैचप तैयार होने के उपरांत ही मिलाना चाहिए। कैचप बनाने के लिए परिष्कृत नमक (रिफाइंड डेरी सॉल्ट) का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि साधारण नमक में लोहा, कैल्शियम व कभी-कभी क्षार भी पाए जाते हैं। लोहे वाली खराबी के बारे में पहले बताया जा चुका है।

7. सिरके के प्रयोग से कैचप के प्राकृतिक रंग में कमी आ जाती है। सिरके के स्थान पर ग्लेशियल एसिड का प्रयोग करने से ऐसा नहीं होता। यह सिरके से सस्ता भी होता है और रंगहीन होने के कारण इसके प्रयोग से कैचप के रंग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

8. धीमी आंच पर अधिक देर तक पकाने से कैचप के रंग पर दुष्प्रभाव पड़ता है। टमाटर के रस को कम से कम समय में अपेक्षित गाढ़ेपन तक पका लेना चाहिए।

टमाटर की डिब्बाबंदी

डिब्बाबंदी के लिए टमाटर गोल, गहरे चिकने, गहरे लाल तथा कुछ कठोर होने चाहिए। फलों में रस की अपेक्षा गूदे वाला भाग अधिक होना चाहिए।

धोने के उपरांत फलों को स्कॉलडिग क्रिया द्वारा छीलना चाहिए। इस क्रिया के अंतर्गत फलों को लगभग एक मिनट के लिए खौलते हुए पानी में डुबोकर ठंडे पानी में डाल दिया जाता है। इससे फल का छिलका फट जाता है और फल के गूदे को छोड़ देता है। अब फलों को हाथ से छील लेते हैं। छिलका उतार लेने के पश्चात् फलों को डिब्बे में भर लिया जाता है। फलों को छीलते तथा डिब्बों में भरते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि फल टूटने न पाएं।

टमाटर की सॉस में सेम

यह एक लोकप्रिय डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ है। इसके बनाने की विधि सरल है। सूखी हुई सेम के दानों को रात भर पानी में भीगने को रख दीजिए। इस अवधि में सेम के दाने लगभग अपने भार के बराबर पानी सोख लेते हैं। अब दानों को खौलते हुए पानी में लगभग 4 मिनट पकाकर मुलायम कर लीजिए। तदुपरांत सेम को डिब्बों में भर दीजिए। ए.आर. लैकर युक्त डिब्बे इसके लिए विशेष उपयुक्त हैं। भरे हुए डिब्बों में गरम-गरम टमाटर कैचप कवरिंग लिक्विड के रूप में डाल दीजिए। वायु रहित करने के उपरांत डिब्बों को तुरंत बंद कर दीजिए और फिर इनकी प्रोसेसिंग 15^0 से. तापमान पर प्रेशर कुकर में कीजिए। ए-1/1 साइज के डिब्बों के लिए प्रोसेसिंग का समय एक घंटा होगा। डिब्बों को ठंडा कर लीजिए।

□□□

पॉलीहाउस में जरबैरा की खेती

सुशीला ऐचरा[1], शांति देवी बम्बोरिया[2] एवं सुमित्रा देवी बम्बोरिया[1]

[1]महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, उदयपुर–313 001

[2]सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

भारत में संरक्षित बागवानी की शुरुआत लगभग चार से पांच दशक पहले ही हुई है। संरक्षित बागवानी के कई फायदों की वजह से इसका प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है। आज के इस बदलते परिवेश में बागवानी के क्षेत्र में फूलों की खेती आर्थिक रूप से भी अत्यंत लाभकारी है। जरबैरा (जरबैरा जेमसोनाई), जिसे एस्टेरेसी कुल के अंतर्गत श्रेणीबद्ध किया गया बहुवर्षीय कर्तित पुष्प वाला पौधा है जिसका कर्तित पुष्पों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। दक्षिणी अफ्रिकी मूल का पौधा होने के कारण जरबैरा को 'अफ्रिकनडेजी' के नाम से जाना जाता है। जरबैरा की खेती बिना पॉलीहाउस के भी की जा सकती है, परन्तु खुले स्थान में जरबैरा लगाने पर पौधों की अच्छी वृद्धि नही हो पाती, जिसके परिणामस्वरूप फूलों की गुणवत्ता भी अच्छी नही होती और बाजार में अच्छा मूल्य नहीं मिल पता। अत: अच्छी गुणवत्ता के फूल के लिए जरबैरा को पॉलीहाउस में उगाना चाहिए। पॉलीहाउस एक विशिष्ट आकार की संरचना होती है, जिसको 200 से 400 माइक्रॉन मोटाई वाली पराबैंगनी विकिरणों से अवरोधीय सफेद रंग की पारदर्शी चादर से ढका जाता है। कम क्षेत्रफल में अधिकतम लाभ कमाने के लिए यह एक उत्तम तकनीक है, हालाँकि इसमें प्रारम्भिक खर्च अधिक है। परन्तु भारत सरकार तथा राज्य सरकार द्वारा संचालित योजनाओं के माध्यम से इस दिशा में मजबूती से कदम बढाए जा सकते हैं।

पॉलीहाउस के लाभ

- पॉलीहाउस में इच्छित वातावरण बनाकर सभी तरह के फूल वर्ष भर पैदा किए जा सकते हैं।
- फसल को किसी भी स्थान पर किसी भी मौसम में पैदा किया जा सकता है।
- पॉलीहाउस में अच्छे गुणवत्तायुक्त फूल पैदा किए जा सकते हैं इसलिए पॉलीहाउस में निर्यात के लिए ज्यादा उपयुक्त होते हैं।
- फसलो में लगाने वाले कीट व बिमारियों की आसानी से सुरक्षा होती है।
- शहरी एवं सीमान्त किसानों के लिए लाभकारी है।
- जिन क्षेत्रों में परम्परागत खेती नहीं की जा सकती है, उनमे पॉलीहाउस की मदद से फूल पैदा करने की संभावनाए बढ़ जाती हैं।
- फसलों के लिए आवश्यक एवं संरक्षित वातावरण प्राप्त होता है।
- प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक उत्पादन होता है।
- बेशकीमती फसलों का उत्पादन होता है।

पॉलीहाउस की कुछ सीमाऐं भी हैं जैसे–

- पॉलीहाउस बनवाने में किसानों को प्रारम्भ में ज्यादा पूंजी लगानी पड़ती है।

- यह केवल व्यावसायिक एवं बागवानी फसलों की दृष्टि से उपयोगी है, दूसरी फसलों के लिए नहीं।

जलवायु

जरबैरा के पौधों की अच्छी बढ़वार एवं फूलों की गुणवत्ता वातावरणीय कारकों जैसे प्रकाश, तापमान, आपेक्षिक आर्द्रता, कार्बन डाई ऑक्साइड आदि पर निर्भर करती है। पॉलीहाउस द्वारा इन कारकों को नियंत्रित किया जा सकता है। दिन के मध्य में सूर्य के अधिक प्रकाश और तापमान से फसल को बचने के लिए 60 प्रतिशत छायादार नेट अथवा जाली का प्रयोग करें। जरबैरा के फूलों के अधिक उत्पादन हेतु दिन का तापमान 18 से 24 डिग्री तथा रात का तापमान 12 से 14 डिग्री सेल्सियस रहना चाहिए। पॉलीहाउस में 60-70 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पुष्प उत्पादन के लिए अच्छी है। कार्बन डाई ऑक्साइड का स्तर 1000-1500 पी.पी.एम बना रहना चाहिए।

पॉलीहाउस के लिए उपयुक्त किस्में

व्यवसायिक पुष्प उत्पादन के लिए सही किस्मों का उपयोग करना आवश्यक है। इसलिए ऐसी किस्मों का चुनाव करना चाहिए जिसका तना लंबा हो तथा फूल का प्रकार डबल तथा अधिक पंखुड़िया हो। सांगरिया, सनसैट, तारा, जपाका, चोनी, रोजेरियन, रौजूला, ओपरोव, सलीना, टिकोरा, ब्यूटी, सनी ब्यॉय, व्हाइट सन गोल्ड स्पॉट, डाराबेल, गोल्डन गेट, गोल्डन फीवर एवं स्टार लाइट आदि जरबैरा की प्रमुख किस्में हैं।

प्रवर्धन

जरबैरा का प्रवर्धन मुख्य रूप से सकर्स द्वारा किया जाता है। जून के महीने में पूरे पौधे को उखाड़ कर उसके सभी सकर्स को हाथ से अलग कर लिया जाता है। औसतन एक पौधे से एक वर्ष में 5 से 7 सकर्स प्राप्त किये जा सकते हैं। रोपाई से पहले सकर्स की पत्तियों एवं जड़ों की छंटाई कर दी जाती है। माइक्रोसवंर्धन द्वारा कम समय में एक ही पौधे से अधिक संख्या मे अधिक पौधे तैयार किए जा सकते हैं।

क्यारी तैयार करना

जरबैरा के पौधों को ऊँची क्यारियों में लगाया जाता है जो करीब 30 से 45 से.मी. ऊँची होती हैं। क्यारियों की चौड़ाई करीब 1 मीटर होनी चाहिए जबकि लंबाई आवश्यकतानुसार या पॉलीहाउस के अनुसार रखी जा सकती है। क्यारियों के बीच में कम से कम 30 से.मी. का रास्ता होना चाहिए जो की खरपतवार नियंत्रण, गुड़ाई तथा पौधों में खाद-पानी देने के काम आता है।

पौधे की रोपाई

जरबैरा के पौधे की रोपाई बसंत ऋतु में (जनवरी से मार्च) तथा गर्मी में (जून से अगस्त) कर सकते है लेकिन बसंत ऋतु में रोपाई उत्तम होती है। पौधों की रोपाई पंक्ति से पंक्ति 30 से 40 से.मी. पर करना उचित रहता है। पौधों को रोकते समय यह ध्यान रखना चाहिए। पौधों का क्राउन 1-2 से.मी. जमीन से ऊपर होना चाहिए। प्रत्येक बेड में 2 या 3 पंक्तियाँ रखी जाती हैं। रोपाई के उपरांत बौछार द्वारा हल्की सिंचाई करें। पौधे की रोपाई करने के 20-25 दिनों तक हजारे द्वारा हल्का पानी सुबह, दोपहर, शाम तीनों समय देना चाहिए। रोपण के उपरांत पॉलीहाउस में 70-80 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता बनाये रखें।

सिंचाई

भरपूर पैदावार के लिए पानी की सही समय पर सही मात्रा बहुत आवश्यक है। पॉलीहाउस में सिंचाई बून्द-बून्द सिंचाई पद्धति से करते हैं। ड्रिप सिंचाई प्रणाली एक नवीनतम पद्धति है। इस पद्धति द्वारा पौधों को उनकी आवश्यकतानुसार पानी को बून्द-बून्द के रूप में पौधे की जड़ क्षेत्र में उपलब्ध कराया जाता है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली में जल के साथ साथ उर्वरक, कीटनाशक व अन्य घुलनशील रसायनिक तत्वों को भी सीधे पौधे तक पहुंचाया जाता है। इसमें जल की बचत के साथ-साथ उर्वरक की भी बचत होती है। जरबैरा सामान्यतया नमी में रहने वाला पौधा है, इसलिए इसे सिंचाई की लगातार अंतराल बाद जरुरत रहती है। जरबेरा के पौधे को

प्रतिदिन 400 से 700 मिली मीटर प्रतिपौधा जल की आवश्यकता होती है, पौधों में पानी की जरुरत मौसम व मृदा के प्रकार पर निर्भर करती है।

फर्टिगेशन

सिंचाई जल के साथ पोषक तत्व देने की विधि को फर्टिगेशन कहते है। नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश 12:8:25 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से डालना चाहिए। सूक्ष्म तत्व जैसे आयरन, जिंक, बोरोन, कॉपर, मेग्नीशियम आदि उचित मात्रा में 0.2 प्रतिशत के घोल के रूप में एक महीने के अंतराल में देना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण और गुड़ाई

महीने में एक बार निराई-गुड़ाई कर देना चाहिए, जिससे खरपतवारों के साथ-साथ मिट्टी में उपस्थित जीवाणु तथा कवक नहीं बढ़ पाते हैं।

कीट एवं रोग नियंत्रन

पॉलीहाउस में उचित प्रबंधन तथा रख-रखाव होने पर फसल कीट और रोगों का प्रकोप नहीं होता, लेकिन कुछ कीट जैसे सफेद मक्खी, चेपा, पत्ती-छेदक, स्पोडोप्टेरा सूड़ी का प्रकोप आम बात है। इनकी रोकथाम के लिए फास्फोमिडॉन, मेटासिस्टोक्स एवं मोनोक्रोटोफॉस का 1.5-20 मिली लीटर प्रति लीटर का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। स्पोडोप्टेरा सूड़ी को चुन-चुन कर एकत्र करके 2 फीट गहरे गड्ढे में दबा दे। कभी-कभी अधिकाधिक नमी होने के कारण क्राउन विलगन, पाउडरी मिल्ड्यू तथा फ्यूजेरियम रोग आते हैं। इसके बचाव के लिए क्रमशः कार्बेन्डाजिम, कॉपर ऑक्सीक्लोराइड, केप्टान तथा बाविस्टिन 1.5-20 प्रतिशत रसायनिक घोल 15 दिन के अंतराल में छिड़काव करते रहना चाहिए।

फूलो की कटाई

फूलों की कटाई उपयुक्त अवस्था पर ही करनी चाहिए। ये फूल अतिशीघ्र नाशवान प्रकति के होते है अतः इनकी कटाई कम तापमान में जल्दी सुबह या देर शाम को करनी चाहिए। प्रातः के कटे फूल अधिक तरोताजा रहते है। फूलों को सामान्यतया उस समय तोड़ना चाहिए, जब फूल के एक दो रे-फ्लोरेट्स पूरी तरह खुल जाये। मुख्यतया कटाई के सही समय किस्म, मौसम, बाजार से दूरी तथा उपभोक्ता की पसन्द पर निर्भर करता है।

उपज

जरबैरा के कर्तित पुष्पों की पैदावार कई कारकों जैसे- पॉलीहाउस के वातावरण, उगाई जाने वाली किस्म, पौधे की आयु, रख-रखाव तथा प्रति वर्ग मीटर रोपित पौधों की संख्या पर निर्भर करती है। जरबैरा की सामान्यतया 24-30 महीने की फसल होती है। पौधे को लगाने के 3-4 महीने बाद फूल आने शुरु होते हैं पॉलीहाउस में औसतन 250-300 फूल प्रति वर्ग मीटर प्रति वर्ष प्राप्त होते है। फूल तोड़ने बाद 3-4 घंटे पानी में रखना चाहिए।

जरबेरा अपनी सुन्दरता के कारण दस महत्वपूर्ण कर्त्तन फूलों में एक अलग स्थान रखता है। व्यापारिक फूलों में इसे बहुत ही पसंद किया जाता है। खुले स्थान में जरबैरा लगाने पर फूलो की गुणवत्ता भी अच्छी नही होती और बाजार में अच्छा मूल्य नही मिल पता। अतः पॉलीहाउस में जरबेरा की खेती कम क्षेत्रफल में अधिक उत्पादन के साथ आर्थिक रूप से भी अत्यंत लाभकारी तकनीक है।

□□□

आलू की फसल के रोग एवं प्रबंधन

अर्चना उदय सिंह[1] एवं एन.वी. कुंभारे[2]

[1]सूत्रकृमि विज्ञान संभाग, [2]केटेट, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

आलू (*सोलेनम ट्यूबरोज़म*) वनस्पति जगत के *सोलेनेसी* कुल से संबंधित है। आलू का जन्म दक्षिण अमेरिका के एण्डीज पहाड़ियों में माना जाता है। भारत में संभवत: सत्रहवीं शताब्दी में पुर्तगालियों द्वारा लाया गया था। इस समय आलू की खेती पूरे भारतवर्ष में अलग-अलग समय में की जाती है। आलू एक सम्पूर्ण आहार है तथा कम समय में पैदा होने वाली फसल है। आलू में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज, विटामिन व अन्य कई प्रकार के पोषक तत्व पाए जाते हैं।

आलू की फसल पर विभिन्न प्रकार के रोग लगते हैं जिनके फलस्वरूप उत्पादन व गुणवत्ता प्रभावित होती हैं। विभिन्न प्रकार की प्रजाति के कवक, जीवाणु, विषाणु व सूत्रकृमि आलू की फसल को प्रभावित करते हैं। आलू की फसल पर लगने वाले विभिन्न प्रकार के रोग व उनके प्रबंधन इस प्रकार है।

(क) कवक जनित रोग

1. काला मस्सा: यह रोग आलू की फसल पर लगने वाला बहुत पुराना रोग है। यह रोग *सिन्काइट्रियम एन्डोबायोटिकम* नामक फफूंद से होता है। इसके प्रभाव से आलू के तने एवं कन्द पर की कलियों पर अनियमित वृद्धि से मस्से बन जाते हैं। ये मस्से कभी छोटे कभी बड़े तथा कभी बहुशक्ति आकृतियों में भी पाए जाते हैं। यह मस्से कभी-कभी तो कन्द के आकार से बड़े हो जाते हैं। अन्तिम अवस्था में इन मस्सों का रंग काला हो जाता है। भूमि की अम्लीयता/क्षारकता व आर्द्रता इस रोग के उत्पन्न होने के मुख्य कारक है।

2. अगेती अंगमारी: यह रोग भारत में बहुत सामान्य है। यह रोग *अल्टरनेरिया सोलेनाई* नामक कवक से होता है। इस रोग में पत्तियों पर भूरे रंग के गोल संकेन्द्रित धब्बे (जो लक्ष्यपट जैसे दिखाई देते हैं) बनते हैं। धब्बों के चारों तरफ गहरा हरिमाहीन क्षेत्र होता है। रोग के भीषण प्रकोप की अवस्था में पत्तियां सूखकर गिरने लगती है। रोगी पौधों में कन्द छोटे व कम बनते हैं। अधिक आर्द्रता व उच्च तापक्रम के वातावरण में यह रोग अधिक व्यापक होता है।

3. पछेती अंगमारी: यह रोग *फाईटोफ्थोरा इन्फेस्टेन्स* नामक कवक से होता है। यह आलू की फसल पर लगने वाला हानिकारक रोग, फसल की उत्पादकता को अधिक प्रभावित करता है। कवक के प्रभाव से पत्तियों पर भूरे मश्त धब्बे दिखाई देते हैं जो कुछ ही दिनों में काले भूरे विक्षतों में बदल जाते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में पौधे का सम्पूर्ण वायुवीय भाग नष्ट हो जाता है। पत्तियों के धब्बों के नीचे भूरे रंग की कवक वृद्धि भी देखी जा सकती है।

4. फ्यूजेरियम म्लानि एवं कन्द शुष्क विगलन: आलू की फसल में यह रोग *फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम* नामक कवक से होता हैं। रोगी पौधे के तने व पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा तना कमजोर हो जाता है। तने पर लोहित-नीले धब्बे भी दिखाई पड़ने लगते हैं। अन्तत: पौधा मुरझाकर मर जाता है। रोग से ग्रसित पौधे में बनते हुए कन्द में

शुष्क विगलन होने लगता है। अधिक आर्द्रता की स्थिति में यह शुष्क विगलन मृद विगलन में बदल जाता है।

5. काली रूसी: आलू मे काली रूसी रोग *राइजोक्टोनिया सोलेनाई* नामक कवक से होता है। कन्दों पर काली भूरी पपड़ी आना इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। अत्यधिक संक्रमण की अवस्था में आलू की सतह का पूरा भाग काला पड़ जाता है।

6. चारकोल विगलन: यह रोग *मेक्रोफोमाइना फैसियोलाइना* नामक कवक से होता है। यह रोग पंजाब, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश व महाराष्ट्र में अधिक होता है। इसके प्रभाव से कन्द की आंखों के पास काले क्षेत्र बनते हैं। कुछ समय पष्ठचात ये पूरे कन्द पर फैल जाते हैं। कन्दों को काटने पर गूदा भी काला दिखाई देता है। ऐसे कन्दों का विगलन शुरू हो जाता है।

7. पर्ण धब्बा: यह रोग उत्तरी भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है। पौधे की निचली पत्तियों पर छोटे गोल व बहुकोणीय हल्के बैंगनी रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। रोगी पौधे अपरिपक्व अवस्था में ही मर जाते हैं। कम तापक्रम व अधिक आर्द्रता के मौसम में यह रोग अधिक होता है।

8. सामान्य स्कैब: यह रोग *स्ट्रेप्टोमाइसीज स्कैबीज* नामक कवक से होता है। इसके प्रभाव से कन्दों पर छोटे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। यह धब्बे बाद में बड़े हो जाते हैं तथा अनियमित कार्क रूपी क्षेत्र बनाते हैं तथा इनमें दरारें भी पड़ जाती है। यह रोग प्राय: महाराष्ट्र के मैदानी क्षेत्रों में पाया जाता है।

9. चूर्णी स्कैब: यह रोग *स्पान्गोस्पोरा सबटेरेनिया* नामक कवक से होता है। इस रोग के लक्षण जड़ों, पत्तियों, शाखाओं एवं कंदों पर दिखाई पड़ते हैं। कन्दों पर भूरे रंग की फुंसीनुमा वृद्धि दिखाई देती है। बाद में इनका आकार बड़ा हो जाता है।

(ख) जीवाणु जनित रोग

1. जीवाणुज मृद विगलन एवं काली मेखला: यह रोग *इर्वीनिया कैरोटोवोरा* नामक जीवाणु से होता है। ग्रसित पौधों के तने सिकुड़कर सड़ने लगते हैं। रोगी पौधा प्राय: बौना रह जाता है, पत्तियां छोटी, हल्के पीले रंग की व कुचित हो जाती हैं। अन्नत: पौधा मुरझाकर मर जाता है। आलू का मृदु विगलन रोग खेत, परिवहन एवं भण्डारण की अवधि में होता है। विगलित आलू के कन्द से एक विशिष्ट प्रकार की गंध आती है।

2. भूरा विगलन: यह रोग *स्यूडोमोनास सोलेनेसिएरम* नामक जीवाणु से होता है। इस रोग को वलय, बंगदी एवं बैंगिल रोग से भी जाना जाता है। रोग के प्रभाव से पौधे बौने व कांस्य रंग के हो जाते हैं एवं अन्त में मुरझा जाते हैं। संवहन बंडल के दारूऊतक भूरे पड़ जाते हैं। यह भूरापन रोगी तनों की सतह पर गाढ़े धब्बों या वर्ण रेखाओं के रूप में दिखाई देता है। यह रोग उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अधिक होता है।

(ग) विषाणु जनित रोग

1. पर्ण वेल्लन: आलू का यह भयंकर विषाणु रोग पोटेटो लीफ रोल वायरस से होता है। इस रोग में, पर्णक का मध्य शिराओं से ऊपर की तरफ मुड़ जाना होता है। इस प्रकार की मुड़ी पत्तियां, मोटी, रूक्ष व भंगुर हो जाती है एवं मात्र छूने से ही टूट जाती हैं।

2. मोजेक: यह वायरस जनित रोग सभी आलू उत्पादक क्षेत्रों में पाया जाता है। रोग के लक्षण विषाणु के विभिन्न विभेदों एवं आलू की किस्मों पर निर्भर करता है। विभिन्न प्रकार के विभेदों के अलग-अलग प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

(i) **आलू का वायरस 'वाई'**- इस विशेष विभेद के लक्षण पर्णपतन रेखा अथवा अग्राभिसारी ऊतक क्षय के रूप में दिखाई देता है। पत्तियों की निचली सतह पर शिराओं पर लगे ऊतकों का क्षय हो जाता है। ग्रसित पौधे की वृद्धि रूक जाती है तथा पत्तियां एवं तने भंगुर हो जाते हैं। यह विषाणु रस संचरणशील हैं। खेतों में यह विषाणु माहू (*एफिड माइजस पर्सिकी*) द्वारा संचरित होते हैं।

(ii) आलू का वायरस 'एक्स'– विषाणु के इस विभेद के प्रभाव से पौधे बौने ही रह जाते हैं तथा कन्दों का आकार भी छोटा रह जाता है। पौधे की निचली पत्तियों की शिराओं का ऊतक क्षय होने के कारण काला पड़ जाता है एवं ऊपरी सतह चितकबरी हो जाती हैं। रोग ग्रस्त पौधा बौने होने के साथ-साथ कुंचित भी हो जाता है। प्राय: ऐसे पौधों की मश्त्यु हो जाती है।

(iii) आलू का वायरस 'एस'– विषाणु के इस विभेद के प्रभाव से ऊतक क्षय के लक्षण पाए जाते हैं। यह ऊतक क्षय कन्दों के आन्तरिक फ्लोएम ऊतकों में होता है जिसके परिणामस्वरूप कन्दों की आंखे मर जाती हैं। प्राय: यह विभेद वायरस 'एक्स' के साथ ही होता है। एक साथ दोनों के प्रभाव से पत्तियों पर पीले धब्बे बनते है तथा पत्तियां विकृत एवं भंगुर हो जाती हैं। पौधे की वृद्धि भी रूक जाती है। अत्यधिक प्रकोप की अवस्था में पौघो की मृत्यु हो जाती है।

(घ) सूत्रकृमि जनित रोग

1. मूल ग्रन्थि: इस प्रकार के लक्षण सूत्रकृमि *मेलाइडोगाइन* प्रजाति से होता है। ये सूत्रकृमि आलू की जड़ों पर छोटी-छोटी ग्रन्थियां एवं कन्दों पर फुन्सियों जैसे उदवर्ध बनाते हैं। भीषण प्रकोप की अवस्था में पौधे बौने ही रह जाते हैं एवं पत्तियां पीली होकर मर जाती हैं।

2. सुनहरा निमेटोड: *ग्लोबोडेरा रोस्टोकाइनैन्सिस* नामक सूत्रकृमि इस प्रकार के रोग के लिए उत्तरदायी है। इनके प्रभाव से तने कमजोर व तकलीनुमा हो जाते हैं एवं पत्तियां भूरी होने लगती हैं। ग्रसित पौधों की जड़ों पर पीले रंग के सिस्ट भी दिखाई पड़ते हैं। इनके अधिक प्रकोप की अवस्था में सम्पूर्ण फसल नष्ट हो जाती है।

(ड) माइकोप्लाज़्मा सदृश सूक्ष्मजीव जनित रोग

1. नील लोहित शीर्ष बेल्लन: इस रोग का कारक माइकोप्लाज़्मा सदृश सूक्ष्मजीव माना जाता है। इस रोग का संचरण *ओरोसियस ऐल्बीसिंक्टस* नामक कीट से होता है। इनके प्रभाव से पौधे के शीर्ष के पर्णक, आधार से ऊपर की ओर मुड़ जाते हैं। पौधों की वृद्धि रूक जाती है एवं कक्षीय कलियों की सुषुप्तावस्था समाप्त हो जाती है परिणामस्वरूप उनसे प्ररोह निकलने लगते हैं। रोग के व्यापक होने की स्थिति में पौधों की म्लानि हो जाती है।

2. पर्णायित: यह रोग भी माइकोप्लाज्मा सदृश सूक्ष्मजीव से होता है। इस प्रकार के रोग के मुख्य लक्षण, तने पर धारियां एवं चौकस वलय बनते हैं। पत्तियां रोमिल एवं हरिमाहीन हो जाती है।

3. कवक कुर्चिका: हस प्रकार के रोग से ग्रसित पौधे भारी संख्या में पतले एवं कमजोर पौधों को जन्म देते हैं। इन पौधों की पत्तियां छोटी होती है। पर्णवृन्त लम्बे एवं पर्णक संकीर्ण हो जाते हैं। ऐसे पौधे देखने में छोटे झाड़ीनुमा लगते हैं।

(च) अपरिजीवी रोग

1. कृष्णान्त रोग: आलू का यह रोग कन्दों के वृद्धिकाल में होता है। जबकि वातावरण में तापमान अधिक होता है। यह रोग यातायात एवं भण्डारण के समय भी होता है। कन्द का मध्य भाग पहले गुलाबी फिर भूरा फिर गहरा भूरा अन्नत: काला हो जाता है। आक्सीजन की कमी एवं उच्च तापमान में यह रोग अधिक होता है।

2. न्यूनताप प्रभाव: यह रोग मुख्यत: भण्डारगृहों अथवा उस क्षेत्र में जहां हिमपात होता है, अधिक व्यापक है। इसके प्रभाव से कन्दों का स्वाद मीठा हो जाता है। कन्दों में ऊतक क्षय के लक्षण भी दिखाई पड़ते हैं। ऊतक क्षय विभिन्न प्रकार के हो जाते हैं जैसे वलय ऊतक क्षय, जालाभ ऊतक क्षय एवं दाग ऊतक क्षय।

3. उच्चताप प्रभाव: जब पौधों की वृद्धि बदली व बरसात के बाद तीव्रगति से हो रही होती हो और तेज धूप हो जाए तो इस तेज धूप के कारण पर्णकों पर आतपदाह के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। प्रभावित कन्दों का रंग पर्णहरित के संश्लेषण के कारण हरा हो जाता है।

(छ) पोषण विकार

1. नाइट्रोजन: आलू में नाइट्रोजन की कमी सामान्य रूप से पाई जाती है। इस पोषक तत्व की कमी से आलू की पत्तियों का रंग पीला हो जाता है।

2. फास्फोरस: इस तत्व की कमी से पौधों की वृद्धि रूक जाती है। कन्द के ऊतकों पर जंग के समान भूरी चित्तियां फास्फोरस की कमी के लक्षण है।

3. पोटेशियम: पोटेशियम की कमी हो जाने से पौधे की वृद्धि रूक जाती है, पत्तियों का रंग असामान्य रूप से गहरा हो जाता है एवं पर्णकों की सतह खुरदुरी व कांस्य रंग की हो जाती है।

4. मैग्नीशियम: इस तत्व की कमी से पर्णक के किनारे व सिरे हरिमाहीन हो जाते हैं। बाद में यह हरिमाहीनता फैलती है। परिणामस्वरूप शिराओं के बीच का सम्पूर्ण भाग हरिमाहीन हो जाता है। पत्ती के इन भाग पर ऊतकक्षयी धब्बे बन जाते हैं।

5. मैग्नीज: इस तत्व की अधिकता से पौधे छोटे रह जाते हैं। तनों पर ऊतकक्षयी धारियां तथा पर्णक ऊतकक्षयी चकत्ते बन जाते हैं।

कवक जनित रोग के रोकथाम के उपाय

1. उचित समय पर पत्तियों पर लगने वाले रोगों के लिए कवकनाशी का छिड़काव करना चाहिए।
2. आलू की खुदाई, परिवहन व भण्डारण के समय कन्दों पर घाव होने से बचाना चाहिए।
3. विगलन रोग से बचने के लिए तीन वर्षीय फसलचक्र अपनाना चाहिए।
4. बीमारी मुक्त बीज कंद का चयन करके और विभिन्न क्षेत्र स्वच्छता उपायों को अपनाने के द्वारा रोग की जांच की जा सकती है।
5. खेतों में आलू संयंत्र से बचने के लिए फसल की रोटेशन किया जाना चाहिए।
6. किस्मों जो प्रतिरोधी या बीमारी के लिए सहिष्णु हो जाना ज्ञात हो जाना चाहिए।
7. फफूसीडियल स्प्रे, तांबे की फफूसीसाइड्स या जीनब के साथ 15 दिन के अंतराल पर दिए गए प्रभावी ढंग से रोग को नियंत्रित कर सकते हैं।
8. कुछ रोगनिरोधी उपायों को अपनाने के द्वारा रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।
9. सबसे पहले, बीज सामग्री को बीमारी मुक्त क्षेत्र से प्राप्त किया जाना चाहिए।
10. उन्हें रोपण से पहले सावधानी से जांच करनी चाहिए और 1 प्रतिशत बोर्डेक्स मिश्रण या अन्य फफूदीनाशक में सूई के द्वारा पूर्व-उपचार किया जाना चाहिए।
11. पौधों को तांबे के फफूदीनाशक के साथ छिड़का जाना चाहिए, 15 दिन के अंतराल पर जनेब या फिनाइल परिसर, जब तक रोपाई न होने तक लगभग एक महीने से शुरू होती है।
12. 7 किलोग्राम / हेक्टेयर में डिडिने एम -45 के साथ रिडोमील ने उत्साहजनक परिणाम दिए हैं।
13. केन्द्रीय आलू अनुसंधान केंद्र, शिमला ने तीन किस्मों यानी कुफ्री किशन, कफुरी सिंधुरी और कुफ्री कुबेर को जारी किया है, जो देर से उगलने के लिए प्रतिरोधी हैं।

सूत्रकृमि नियंत्रण

1. इस प्रयोजन के लिए मिट्टी में आलू से बचने के लिए कम से कम दो वर्षों के लिए एक फसल चक्र अपनाया जाना चाहिए।
2. जब आलू भी उगाया जाता है, तो कटाई को सावधानीपूर्वक और कुशलतापूर्वक किया जाना चाहिए ताकि मिट्टी में कंद बड़ी संख्या में न छोड़े जाएं, क्योंकि ये सूत्रकृमि को बढाने में मदद करेंगे।
3. कुछ आलू किस्मों को सूत्रकृमि संक्रमण के लिए अत्यधिक प्रतिरोधी होने की सूचना है और जहां भी संभव हो वहां इन्हें उगाया जाना चाहिए।

4. सूत्रकृमि आबादी की जांच करने के लिए इंग्लैंड और अमरीका में मृदा गौणियों जैसे ''डी-डी'' का सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है।

5. भारत में निलगिरी पर स्थानीय आबादी के दूसरे आलू के बढ़ते इलाकों में सूत्रकृमि के प्रसार को रोकने के लिए सख्त संगरोध उपायों की आवश्यकता है।

6. नीलगिरी पर प्रभावित क्षेत्रों में व्यवस्थित दुश्मन और नियमित रूप से उन्मूलन कार्य आवश्यक हैं।

7. सूत्रकृमि के प्रतिरोध के लिए भारत में आलू की खेती के परीक्षण पर काम करना आवश्यक है।

8. एफिड (माहू) जो विषाणु रोग के संवाहक की भूमिका अदा करते हैं, इनके प्रकोप के समय थायोडान या मेटासिस्टास (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव कर देना चाहिए।

विषाणु रोग नियंत्रण

1. खेतों को गर्मी के मौसम में जुताई करके छोड़ देना चाहिए।

2. प्रमाणित एवं रोगरोधी किस्मों का चयन करना चाहिए।

3. रोगरहित कन्द ही बीज के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

4. फसल का समय-समय पर निरीक्षण कर विषाणु व जीवाणु से ग्रसित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

5. आलू का भण्डारण शीतगृहों में ही करना चाहिए।

6. बुआई से पहले कन्दों को 0.5 प्रतिशत एगेलाल या एरेटोन के घोल में पांच मिनट के लिए डुबाने चाहिए।

7. समय-समय पर गुड़ाई, मेड़ों पर मिट्टी चढ़ाना एवं सिंचाई पर भी ध्यान देना चाहिए।

8. आलू की खुदाई के समय खेतों की मिट्टी अधिक नम नहीं होनी चाहिए।

9. आलू की कुछ उन्नत किस्में जैसे कुफरी ज्योति, कफुरी नवीन, कफुरी जीवन, कुफरी आनन्द, कुफरी बादशाह, कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी सिंदूरी व कुफरी पोखराज है। इनको उपयोग में लाना चाहिए।

□□□

कृषक नेतृत नवाचार एवं कृषि प्रौद्योगिकियों के प्रसार हेतु एक नवीन दृष्टिकोण

मनजीत सिंह नैन, रश्मि सिंह, ज्योति रंजन मिश्रा, जगदीश प्रसाद शर्मा एवं नफीस अहमद

कृषि प्रसार संभाग, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

कृषि विकास नवाचार प्रेरित होता है, और अंततः नवाचार किसानों के अंगीकरण निर्णय में अंतर डालता है। वाणिज्यिक कृषि के परिपेक्ष में दीर्घावधि के सुधार व कृषि उत्पादन की स्थिरता के साथ उत्पाद की प्रतिस्पर्धात्मकता के लिए कृषि के नवीन तरीकों का अत्यंत महत्व है। कई किसान सृजनात्मक व रचनात्मक क्षमताओं से भरपूर होते हैं और प्रासंगिक स्थानीय नवाचारों का जनन करते हैं। भारतीय किसान भी उपलब्ध कृषि तकनीकों को ज्यादा प्रभावी और मूल्य संगत बनाने हेतु संशोधित कर रहे हैं। इन नवाचारों ने पीढ़ियों से नई तकनीकी व कृषि–व्यवहारों के बेहतर रूप मे आजीविका विकल्पों को सुनिश्चित करने मे मदद की है। कृषक जनित नवाचारों का प्रचार वर्तमान सरकार की भी प्राथमिकता है।

कृषक जनित नवाचार का महत्व और समझ

नवाचारों का जनन विभिन्न प्रकार के स्रोतों से होता है जैसे कि अंतः प्रज्ञा, सहज बोध, सपने, कार्य–अनुभव, प्रशिक्षण, दोस्तों के सुझाव से, समस्याओं के समाधान के रूप में, या समस्या का अन्य कोई उपाय न होने की परिस्थिति में। नवाचारी कृषक वो हैं जिन्होने फसल उत्पादन के वो तरीके या तो विकसित किए हैं अथवा नए तरीकों का परीक्षण किया है जो उत्पादन को संरक्षण के साथ जोड़ते हैं। नवाचार या तो सरल कृषण उपायों (उदाहरणार्थ मिश्रित फसल) या वो परिष्कृत संरचनात्मक डिजाइन को कहते हैं जिनको एकीकृत उत्पादन प्रणालियों के साथ संयुक्त किया जा सके। नवाचार वर्तमान मे चल रहे किसी प्रयोग का हिस्सा हो सकता है या पहले से सिद्ध और स्थानीय परंपरा के रूप में भी स्थापित हो चुका प्रभावी नवीन व्यवहार हो सकते हैं। अतः परिभाषात्मक तौर पर वह क्रिया या प्रयास जिसे किसान ने अपनी पहल या प्रेरणा से शुरू किया हो व उस प्रक्रिया को बाद में संशोधित भी खुद किसान ने ही किया हो कृषक जनित नवाचार कहते हैं । इन प्रक्रियाओं को विशिष्ट जलवायु क्षेत्रों व सामाजिक आर्थिक स्थितियों मे विकसित किया जाता है व इनका बड़े पैमाने पर अंगीकरण किया जाना चाहिए। किसानों ने चयन कर अधिक उत्पादकता व गुणवत्ताके लिए जानी वाली कई नवीन/देशज फसलों और किस्मों का विकास किया है। किसानों द्वारा मूल्य संवर्धन, कम लागत की प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी, जीवनावधि वृद्धि हेतु तकनीकी और बेहतर मार्केटिंग के तरीके विकसित किए हैं। इसके अलावा संचालन क्षमता और उत्पादकता बढ़ाने में मदद करने वाले विभिन्न कृषि यंत्र और उपकरण भी बड़ी संख्या में निर्मित किए हैं। इसमें महिला किसानों का विविध जर्मप्लाज्म संरक्षण, फसल कटाई उपरांत प्रबंधन व मूल्य संवर्धन में विशेष योगदान रहा है जिससे कृषि आय बढ़ाने में मदद मिली है। अधिकतर किसानों द्वारा अपनाई

गई कृषि की पारंपरिक प्रक्रियाएँ किसानों ने अपने बृहत अनुभव के बाद विशिष्ट कृषि जलवायु और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के तहत विकसित की हैं।

कृषक जनित नवीन तकनीकी अथवा नवाचारों को न तो कहीं से मान्यता प्राप्त है और न ही दस्तावेजीकरण किया गया है। इसके अलावा कृषक जनित नवाचारों के विषय में बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर) को अकसर नजरअंदाज कर दिया जाता रहा है। पारंपरिक ज्ञान के आधार पर कृषक जनित नवाचारों के मूल्य को वैज्ञानिकों द्वारा भी नगण्य माना गया है। कृषक जनित नवाचारों के अधोलंब या समस्तरीय विस्तार के लिए कोई संस्थागत प्रयास भी नहीं किया गया है। नतीजतन, नवाचारी कृषक जनित कई प्रौद्योगिकियों अन्य किसानों तक नहीं पहुँच पायी हैं। अभी हाल मे ही सीमित पैमाने पर कुछ प्रयास सरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों द्वारा किए गए हैं जहां कृषक जनित नवाचारको बौद्धिक सम्पदा अधिकार संरक्षण के तहत लाया गया है। नवाचारी कृषक प्रभावी रूप से सलाहकार और उद्यमी बनकर कृषि के अलावा भी आमदनी अर्जित कर सकते हैं परंतु उचित सहायता की कमी, नवाचार को बड़े पैमाने पर फैलाने के लिए संस्थागत जरूरतें और संबंधित बाधाओं ने कृषक से कृषक तक प्रसरण, नवाचारों का संस्थानीकरण और आधुनिक ज्ञान के साथ सम्मिश्रण को रोक रखा है।

कृषक जनित नवाचारों का विस्तरण

कृषक जनित बहुमूल्य नवाचार का पैमाना विस्तृत करने के लिए किसानों के सशक्त नवाचारों की पहचान करने के साथ उनका सत्यापन और शोधन आवश्यक हो गया है। इसके लिए अनुसंधान और आउटरीच कार्यक्रम में किसानों की भागीदारी के साथ 'नीचे से ऊपर' के दृष्टिकोण को अपनाना जरूरी है। एक क्षेत्र में पहचान की गई अभिनव प्रौद्योगिकियों का प्रकाशन, प्रलेखन, सफलता की कहानियों और प्रचार-प्रसार के माध्यम से उसी तरह के पर्यावरण के क्षेत्रों में कहीं और लोकप्रिय बनाने की जरूरत है। किसान के अभिनव प्रयासों का कृषि पर्यटन के रूप में विकास ना केवल अधिक से अधिक जन जागरूकता उत्पन्न करेगा बल्कि अधिक धन अर्जन और हमारी समद्ध जैव विविधता की रक्षा करने में अधिक से अधिक सामुदायिक भागीदारी में मदद करेगा । विभिन्न संगठनों द्वारा आगे प्रसार करने के लिए नवाचारों और परंपरागत ज्ञान का दस्तावेजीकरण अत्यंत आवश्यक है। बड़े पैमाने पर अंगीकरण और लोकप्रिय बनाने के लिए पारंपरिक नवाचारों और वैज्ञानिक शोधन के समुचित मिश्रण करने हेतु अनुसंधान संस्थानों की भागीदारी अति महत्वपूर्ण है। चुन्निदा नवाचारों के विस्तरण के साथ, कृषकों से लेकर अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान वैज्ञानिकों सभी को और किसानों के द्वारा अनुसंधान को बढ़ावा देने की प्रेरणादायक विधियों को साझा करने और पैमाने को विस्तृत करने की जरूरत है। कृषक नेतृत अनुसंधान द्वारा सामाजिक ऊर्जा को पैदा करके उसका दोहन इस प्रकार किया जा सकता है ताकि लोग अलग-अलग या व्यक्तिगत लाभ से परे, ऐसी गतिविधियों में संलग्न होने के लिए तैयार हों जिससे समुदाय को लाभ हो सके। बड़े पैमाने पर बदलते कृषि स्वरूप के मध्यनजर परंपरागत दृष्टिकोण से मजबूत हितधारक अंतर-संबंधोंवाली सोच के लिए बदलाव की जरूरत है। किसानों के तकनीकी और प्रबंधकीय क्षमताओं में सुधार करने के लिए अनुभवात्मक तरीकों जैसे विशेष रूप से फार्मर्स फील्ड स्कूलों और भागीदारी प्रौद्योगिकी के विकास का समर्थन करके नया दृष्टिकोण तैयार करने की जरूरत है। ज्ञान प्रबंधन प्रणाली, टकराव प्रबंधन दृष्टिकोण, निजी क्षेत्र, बाजार और गैर सरकारी संगठनों के साथ गठबंधन के निर्माण के लिए बहु हितधारकों के माध्यम से तुलनात्मक अनुभवों के प्रावधान पर जोर दिये जाने की जरूरत है। जमीनी स्तर पर संबंधों को बनाए रखने के लिए परदे के पीछे के प्रबंधन, समय, काम, और लागत का आभास आकस्मिक प्रेक्षक को नहीं हो सकता। किसानों को सामूहिक उत्पादन प्रक्रिया शुरू करने, अतिरिक्त प्रयासों के लिए बेहतर पारिश्रमिक सुनिश्चित करने और हितधारकों की नेटवर्किंग के लिए और संस्थागत व्यवस्था की जरूरत है ताकि चुनौतियों को अवसरों में परिवर्तित किया जा सके ।

कृषक नेतृत प्रसार हेतु रणनीति

भा.कृ.अनु.प-भा.कृ.अनु.स. (पूसा संस्थान), नई दिल्ली ने विषय की गंभीरता और आवश्यकता को समझते हुए अनुसंधान के प्रमुख क्षेत्र के रूप में माना और शोध परियोजना उद्यमिता विकास और कृषक नेतृत नवाचारों के माध्यम से क्षेत्र लाभप्रदता में वृद्धि' नामक संस्थागत परियोजना कार्यान्वित की है। इस पहल से किसानों की अभिनव क्षमताओं के बारे में जागरूकता बढ़ाने, किसानों के नेतृत्व में हुए बड़े प्रभाव क्षमता वाले नवाचारों की पहचान करने और कृषि और संबद्ध क्षेत्र में किसानों के नवाचारों के अनुभवों को साझा करना मुख्य उद्देश्य है। बड़ी आबादी के बीच किसानों द्वारा किए गए नवाचारों के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान की तकनीकों के प्रसारण के लिए नवोन्मेषी कृषकों, अनुसंधान संस्थान और कृषि विपणन एजेंसियों की नेटवर्किंग के लिए आधार स्थापित करना भी एक उद्देश्य है। वैज्ञानिकों, शोध प्रबंधकों, नवीन आविष्कार करने वाले किसानों और विपणन एजेंसियों के प्रतिनिधियों की भागीदारी से क्षेत्र विशेष कृषि प्रौद्योगिकियों के प्रसार के लिए किसान नेतृत प्रसार दृष्टिकोण के लिए एक रूपरेखा तैयार करने की दिशा में यह प्रयास कृषि तकनीक जनन और उसके प्रसरण द्वारा टिकाऊ कृषि को बढ़ावा देने में मददगार साबित होगा।

□□□

खेत उपकरणों का कस्टम हायरिंग मॉडल

नितिन कुमार भारती, रणबीर सिंह, पी.के. साहू एवं मुकेश कुमार सिंह
कृषि अभियांत्रिक संभाग, भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

विश्व में कृषि की शुरूआत हजारों वर्ष पहले हो गयी थी और एशिया महाद्वीप में भी हमारे पूर्वजो ने कृषि को जीविकापार्जन के लिए अपनाया, भारत देश भी इस दिशा में आगे बढ़ा और आत्मनिर्भर बना। समय के साथ फसलोत्पादन की विश्व वरीयता सूची में कई महत्वपूर्ण स्थान भी प्राप्त किये, लेकिन एक पंक्ति जिसे सुनकर हर भारतीय बढ़ा होता है और अपने आप में गौरव महसूस करता है। वह है **''भारत एक कृषि प्रधान देश है''** और जहाँ हर व्यक्ति अपने आप को विकास की दौड़ में भागीदार समझता है। लेकिन बढ़ती जनसंख्या और पर्यावरण असंतुलन के कारण उसे लगता है कि यह पंक्ति कितने समय तक भारतीय कृषि संस्कृति का व्याख्यान करती रहेगी। जहाँ पिछली सदी में आजादी के बाद भारत देश ने तीन युद्धों का सामना करते हुए भी हरित क्रांति के माध्यम से फसल उत्पादन को शीर्ष पर पहुँचाया वहीं औद्योगिकीकरण विकास का गति को तेज किया साथ ही साथ कृषि में मशीनीकरण अर्थात् 1970 के दशक में कृषि में ट्रैक्टर युग की शुरूआत ने किसानों के जीवन में खुशहाली ला दी थी। जिसके परिणामस्वरूप भारत ने अनाज उत्पन्न करने वाले देशों की सूची में प्रमुख स्थान प्राप्त किया। वहीं बढ़ती जनसंख्या व पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़वारे की प्रथा के कारण कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल लगातार कम होता चला गया। जिससे बड़े किसानों की संख्या में लगातार कमी होती चली गयी तथा छोटे व सीमांत किसानों पर देश के एक सौ पचीस करोड़ो लोगों की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा का भार बढ़ता गया। जहाँ उत्तर भारत के कुछ राज्यों जैसे पंजाब व हरियाणा के किसानों ने यंत्रीकरण व उन्नत कृषि तकनीकों को अपनाकर अपनी जीवन शैली की बदल दिया वहीं देश के विभिन्न हिस्सों का किसान आजादी के 69 वर्षों बाद भी परंपरागत स्थिति में बना हुआ है क्योंकि उसके पास उन्नत कृषि यंत्र और कृषि उच्च स्तरीय तकनीकों का अभाव हैं जिनको अपनाने के लिए पर्याप्त धन राशि भी उनके पास नहीं है। इसको ध्यान में रखते हुए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने छोटे एवं सीमांत किसानों को सस्ती दर पर कृषि यंत्रीकरण को अपनाने के लिए कस्टम हायरिंग केन्द्रों को देश के कई राज्यों में स्थापित किया है। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य यह है कि छोटे व सीमांत किसानों को उन्नत ढंग से खेती करने के आधुनिक यंत्रों की उपलब्धता से समय पर फसलों की बुवाई, रोपाई, कटाई एवं अन्य सस्य क्रियाएं समय पर हो सकें। जिसके लिए कई राज्यों में कस्टम हायरिंग केन्द्रों की स्थापना से तथा आधुनिक कृषि यंत्र के प्रयोग से किसानों के बीच एक उत्साह की किरण जगी है और साथ ही साथ कृषक समूह तथा ग्रामीण क्षेत्रों के कुछ बेरोजगार युवाओं के लिए कस्टम हायरिंग एक रोजगार के रूप में उभरा है। जिससे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी की ''स्टार्ट अप इंड़िया'' योजना को भी बढ़ावा मिला है। जिससे किसान भी फिर से खेती को एक उद्यम के रूप में अपना रहें हैं।

क्या है कस्टम हायरिंग?

कृषि के आधुनिकीकरण में कृषि यांत्रिकीकरण एक

महत्वपूर्ण घटक है। किसानों की मांग एवं आवश्यकता को देखते हुए विभिन्न कृषि योजनाओं में कृषि यांत्रिकीकरण को शामिल किया गया है। कस्टम हायरिंग मॉडल भी कृषि यांत्रिकीकरण की योजना है जिसके अंतर्गत छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए कृषि उपकरणों को कस्टम हायरिंग केन्दों के द्वारा किराये पर उपलब्ध कराया जाता है। जो कृषि यंत्र एवं मशीनरी पर उप मिशन की ओर से एक ऐसी पहल है जिसमें छोटे व सीमांत जोत वाले किसान कृषि यत्रों की सेवाओं को किराये पर लेकर उपयोग कर सकते हैं तथा समय एवं श्रम की बचत करके फसल उत्पादन के क्षेत्र में बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकते है। इन केन्द्रों को स्थापित करने के लिए कृषि स्नातकों को सरकार की ओर से सब्सिडी (अनुदान राशि) भी दी जा रही है।

कस्टम हायरिंग केन्द्रों पर उपलब्ध यंत्र

किसानों के लिए कस्टम हायरिंग केन्द्रों पर विभिन्न प्रकार के आधुनिक कृषि यंत्र सस्ते परिचालन दरों पर उपलब्ध होते हैं, जिन्हें किसान अथवा कृषक समूह द्वारा अपनाकर अपनी फसल उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाकर अधिक लाभ कमा सकते हैं। इन केन्द्रों पर उपलब्ध यंत्र जैसे डिस्क प्लाऊ, डिस्क हैरो, कल्टीवेटर, पावर वीडर, रोटावेटर, लैंड लेवलर, जीरो टिल कम फर्टी डिल, पावर स्प्रेयर, रीपर कम बान्डर, गेहूँ व धान थ्रेसर तथा अनाज सफाई यंत्रों के अलावा कुछ यंत्र जैसे पैडी ट्रांसप्लांटर को छत्तीशगढ़ राज्य ने अनिवार्य किया है।

कस्टम हायरिंग केन्द्र का स्थानः इन केन्द्रों की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि ये गांवों और एक निश्चित् स्थान से 5 से 7 किलोमीटर दूरी पर स्थित होने चाहिए ताकि स्थानीय किसानों को इन केन्द्रों का पूरा लाभ मिल सकें। इन केन्द्रों से परिवहन लागत, श्रम और समय की भी बचत होगी।

कस्टम हायरिंग केन्द्र इकाई

कस्टम हायरिंग केन्द्र मूल रूप से कृषि मशीनरी, यंत्र एवं उपकरणों की सम्मिलित इकाई है। इन इकाइयों में विशेष रूप से ट्रैक्टर, पावर टिलर, लेजर लैंड लेवलर, जुताई, बुवाई, हार्वेस्टर एवं स्वचालित मशीनरी का उपयोग किया जाता है।

कस्टम हायरिंग केन्द्रों की स्थापना

आज भारतीय कृषि मानव शक्ति पर निर्भरता से एक श्रमिक बदलाव के दौर से गुजर रही है और मानव श्रम की बढ़ती कमी और पशु शक्ति रखरखाव के लिए बढ़ती लागत के कारण यांत्रिक शक्ति की ओर बढ़ रही है। इसके अलावा यांत्रिक शक्ति का असर खेती पर पड़ता है। आज फसलोत्पादन में कठिन परिश्रम को कम करने और कृषि कार्यों को समय पर करने के लिए कृषि में मशीनीकरण की आवश्यकता है। भारत में यांत्रिक शक्ति उच्चतम पंजाब में 3.5 किलोवाट/हेक्टेयर है जबकि बिहार, उड़ीसा एवं झारखंड आदि में 1 किलोवाट/हेक्टेयर उपयोग हो रहा है। छोटे व सीमांत जोत वाले 80 प्रतिशत किसान की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण वे किसान खेती में मशीनीकरण उपयोग करने में असमर्थ हैं। अपने दम पर या संस्थागत ऋण के माध्यम से छोटे एवं सीमांत किसानों को लाभ पहुँचाने एवं कृषि मशीनीकरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से देश के राज्यों में विभिन्न स्थानों पर कस्टम हायरिंग केन्द्रों की स्थापना की गयी है। इन केन्द्रों की स्थापना के लिये बैंक भी वित्त उपलब्ध करा रहे हैं तथा मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्यों में सरकारों की तरफ से ऐसे केन्द्रों को स्थापित करने हेतु 50 प्रतिशत की अनुदान राशि भी प्रदान की जा रही है।

कस्टम हायरिंग केन्द्रों के लिए संभावनाएं

हमारे देश में छोटे एवं सीमांत जोत वाले किसानों के लिए खेत, बिजली एवं कृषि मशीनरी की उपलब्धता बहुत कम है। 80 प्रतिशत छोटे/सीमांत जोत वाले किसानों को कस्टम हायरिंग केन्द्र कृषि मशीनों की आवश्यकता को पूरा करेंगे।

कस्टम हायरिंग केन्द्रों के लाभ

1. छोटे और सीमांत किसानों के लिए ये केन्द्र महंगी कृषि मशीनरी को क्षेत्रीय स्तर पर उपलब्ध कराते हैं।
2. केन्द्रों के माध्यम से किसान हित में पर्यावरण संरक्षण व उच्च प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा मिलता है।
3. कठिन परिश्रम को कम कर देता है।
4. फसल अवशेषों की पुन:चक्रीय सुविधा के साथ उनको जलाने से रोकने में भी सहायक है।
5. मानव श्रम की तुलना में यांत्रिक ऊर्जा उपयोग से फसल उत्पादन लागत में कमी आती है।
6. कुशल श्रम और छोटे कारीगरों को काम करने के अवसर प्रदान करता है।
7. बेरोजगार युवाओं के लिए रोजगार के विकल्प के रूप में कार्य करता है।
1. किसानों को यंत्रीकृत खेती की ओर प्रेरित करना।
2. किसानोपयोगी मशीनों का प्रचार प्रसार करना।
3. गांवों को तकनीकी ज्ञान केन्द्र के रूप में विकसित करना।
4. ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार की ओर उन्मुख करना।
5. कृषि को बाजारोन्मुख बनाना।
6. किसानों को कृषि आधारित उद्यमों की ओर प्रेरित करना।
7. कठिन परिश्रम कम करता है।
8. तीव्र गति से उत्पादन बढ़ाता है।
9. कटाई के बाद विपणन लागत में कमी आती है।

कस्टम हायरिंग केन्द्र के उद्देश्य

1. छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए विभिन्न कृषि यंत्र एवं मशीनों का निर्माण करना।
2. तीव्र गति से खेती में मशीनीकरण अपनाने के लिए।
3. छोटे एवं सीमांत किसानों को किराये पर विभिन्न कृषि यंत्र एवं मशीनें उपलब्ध कराना।
4. छोटे एवं सीमांत जोत में फसल सीजन में यंत्रीकरण गतिविधियों का विस्तार करने के लिए।
5. फसल विशेष के लिए विभिन्न उच्च मूल्य की मशीनों की सेवाएं प्रदान करना।

कस्टम हायरिंग के लिए फार्म मशीनरी बैंक की स्थापना–यह उचित स्थानों एवं फसलों के लिये कस्टम हायरिंग हेतु फार्म मशीनरी बैंकों की स्थापना के लिए उपयुक्त वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

कस्टम हायरिंग के लिए हाई-टेक, उच्च उत्पादक उपकरण हब की स्थापना–यह गन्ना, कपास, आदि जैसे उच्च मूल्य फसलों के लिए हाई-टेक मशीन हबों की स्थापना के लिए उपयुक्त वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

सारणी 1: कस्टम हायरिंग केन्द्रों के लिये परियोजना लागत

क्र.सं.	मद	अधिकतम अनुमेय परियोजना लागत	सहायता का स्वरूप (प्रतिशत)
1.	10 लाख तक के कस्टम हायरिंग केन्द्र की स्थापना हेतु वित्तीय सहायता	परियोजना पर आधारित 4 लाख रू.	40
2.	25 लाख तक के कस्टम हायरिंग केन्द्र की स्थापना हेतु वित्तीय सहायता	परियोजना पर आधारित 10 लाख रू.	40
3.	40 लाख तक के कस्टम हायरिंग केन्द्र की स्थापना हेतु वित्तीय सहायता	परियोजना पर आधारित 16 लाख रू.	40
4.	60 लाख तक के कस्टम हायरिंग केन्द्र की स्थापना हेतु वित्तीय सहायता	परियोजना पर आधारित 24 लाख रू.	40

सारणी 2: सरकारी परियोजना राशि

क्र.सं.	मद	अधिकतम अनुदेय परियोजना लागत	सहायता का स्वरूप (प्रतिशत)
1.	100 लाख तक के कस्टम हायरिंग केन्द्र की स्थापना हेतु वित्तीय सहायता	परियोजना पर आधारित 40 लाख रू.	40
2.	150 लाख तक के कस्टम हायरिंग केन्द्र की स्थापना हेतु वित्तीय सहायता	परियोजना पर आधारित 60 लाख रू.	40
3.	200 लाख तक के कस्टम हायरिंग केन्द्र की स्थापना हेतु वित्तीय सहायता	परियोजना पर आधारित 80 लाख रू.	40
4.	250 लाख तक के कस्टम हायरिंग केन्द्र की स्थापना हेतु वित्तीय सहायता	परियोजना पर आधारित 100 लाख रू.	40

सारणी 3: में कम यंत्रीकृत क्षेत्रों में कस्टम हायरिंग केंद्रों से लाभार्थी मशीनरी/उपकरणों के लिए प्रति हेक्टेयर कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय वित्तीय सहायता मुहैया कराता है।

मद	अधिकतम अनुदेय परियोजना लागत	सहायता का स्वरुप	कार्य के मानक
(क) चयनित गांवों में स्थापित फार्म मशीनरी बैंक के किसान सदस्यों को हायरिंग प्रभार	अधिकतम प्रति 1.00 हेक्टेयर क्षेत्र तक निम्नलिखित मानकों के अनुसार ट्रैक्टर/पावर चालित परिचालन रू.2000/प्रति है. प्रति किसान प्रति वर्ष। बैल चालित यंत्रीकृत परिचालन रू. 1000 प्रति है. प्रति किसान प्रति वर्ष, मानक परिचालन रू. 750 प्रति हेक्टेयर प्रति किसान प्रति वर्ष	परिचालन लागत का 50 प्रतिशत	प्रदर्शन के लिए अन्य मिशनों द्वारा अभिज्ञात किए गए ग्राम जिनमें अनाजों, दालों एवं तिलहनों का उत्पादन बहुत कम है। स्थापित फार्म मशीनरी बैंकों के किसान सदस्यों को एकमुस्त हायरिंग सहायता।
(ख) कस्टम	न्यूनतम120 हेक्टेयर/मौसम/कस्टम हायरिंग केन्द्र	रू.4000 प्रति हेक्टेयर	स्थापित कस्टम हायरिंग केन्द्र को प्रदर्शन खर्च, ये प्रदर्शन 120 हेक्टेयर प्रति गांव तक सीमित।

कस्टम हायरिंग केन्द्रों का प्रभाव

कस्टम हायरिंग केन्द्रों द्वारा गांवों में जलवायु के अनुरूप कृषि मशीनरी के माध्यम से नई फसलों के साथ-साथ नई प्रौद्योगिकियों को भी अपनाने से प्रति इकाई उत्पादकता में वृद्धि होती है।

कृषि यंत्रों को खरीदकर किराए पर देना का सारांश

खेतों में जुताई, कटाई एवं मंड़ाई आदि कार्यों हेतु आज उचित समस्त किसानों के पास उपलब्ध नहीं है। यदि डिस्क हैरो, कल्टीवेटर, छोटे हार्वेस्टर, रोटावेटर तथा सीड कम फर्टीड्रिल, फरो-रिज्ड बेड प्लांटर आदि गांव के युवक एक सहकारिता समूह बनाकर रख लेते है तो गांव के सभी किसानों का समस्त कार्य केन्द्र से हो जाएगा और दूसरे केन्द्र के समूहों के रूप में युवाओं को एक अच्छा रोजगार व आय का लाभ एक साथ प्राप्त हो सकेंगा। मैक्रो मोड योजना के अंतर्गत किसी भी छोटे यंत्र पर 50 प्रतिशत, कम कीमत वाले यंत्र पर 25 प्रतिशत, ट्रैक्टर व थ्रेशर आदि पर अधिकतम 30 हजार तथा पावर टिलर पर 30 से 60 हजार रूपये तक सरकारी अनुदान प्राप्त है।

□□□

आलू का शीत भण्डारण - आंकड़ों का विश्लेषण

विजय पाल[1], राकेश पाण्डे[1], आर. ऐजेकिल[2] एवं अतर सिंह[1]

[1]पादप कार्यिकी संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110 012

[2]राष्ट्रीय समन्वयक, राष्ट्रीय कृषि नवोन्मेषी परियोजना (एन.ए.आई.पी.),
कृषि अनुसंधान भवन-II, पूसा कैम्पस, नई दिल्ली-110 012

अन्तर्राष्ट्रीय आलू केन्द्र, पेरू [International Potato Centre (CIP), Peru] में किये गए एक नए शोध के अनुसार आलू मंगल ग्रह के वातावरण में उगने के लिए सक्षम पाया गया है। यह प्रयोग न केवल आलू की हमारे भोजन में महत्ता को साबित करता है अपितु यह मानव के किसी अन्य ग्रह पर जीवित रहने की क्षमता में आलू के योगदान को इंगित करता है। भारत वर्ष ने लगभग 22.09 टन प्रति हेक्टेयर की पैदावार के साथ वर्ष 2016 में 2. 06 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल से 45.57 मिलियन टन आलू पैदा किया। भारत विश्व के 365.44 मिलियन टन उत्पादन में लगभग 12.00 प्रतिशत का योगदान देता है और विश्व में दूसरे नम्बर पर है। शीत भण्डारण, बहुत से फलों, सब्जियों और संसाधित उत्पादों के कटाई उपरांत प्रबंधन का एक अटूट भाग है। शीत भण्डारण व्यपारीय खाद्य उत्पादों के भण्डारण और संग्रहण अवधि में वृद्धि कर कटाई उपरांत होने वाले ह्रास को कम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाता है। ह्रासशील खाद्य-उत्पादों का सामयिक भण्डारण उनके खाद्य या संसाधन उद्देश्यों के लिए सतत आपूर्ति करने के अलावा यथा स्थान एवं समय पर उचित मूल्य-आपूर्ति, मूल्य-स्थिरीकरण, उपयुक्त-वितरण और बाजारीकरण करने में भी अत्यन्त उपयोगी है। यह लेख आलू के शीत भण्डारण पर केन्द्रित है और इसके आंकड़ों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। विश्लेषण से निकले तथ्य तथा शीत भण्डारण को अधिक कारगर, उपयोगी और विस्तृत बनाने की दिशा में यह लेख कुछ प्रमुख बिन्दुओं को भी रेखांकित करता है।

शीतग्रहों में आलू का भण्डारण

एक अनुमान के मुताविक भारत में 6227 शीत भण्डार हैं और ये 31.20 मिलियन टन तक भण्डारण क्षमता प्रदान करते हैं। मुख्यत: बागवानी उत्पाद, संसाधित खाद्य पदार्थ, पशुधन और फार्मस्यूटिकल के उत्पादों को शीतग्रहों में रखा जाता है। यहां पर यह जानना जरूरी है कि कुल शीत भण्डारों में से लगभग 3414 शीत भण्डार (55 प्रतिशत) केवल आलू के भण्डारण में प्रयोग किये जाते हैं। कुल मात्रा का लगभग 22 से 25 मिलियन टन आलू शीत भण्डारों में भण्डारित किया जाता है। यह आलू के कुल उत्पादन का लगभग 50 से 55 प्रतिशत और कुल उपलब्ध शीत भण्डारण का 70 से 80 प्रतिशत है। इस प्रकार अधिकतर शीत भण्डारण केवल एक ही उत्पाद द्वारा प्रयोग किया जाता है और यह आलू है।

उद्देश्य अनुसार शीतगृहों में आलू का भण्डारण निम्न प्रकार से है। 1) लगभग 6.70 मिलियन टन आलू बीज के लिए तैयार किया जाता है (30 से 125 ग्राम के कन्द, जिसे बीजू आलू कहा जाता है)। यह कुल आलू उत्पादन का 14 से 15 प्रतिशत है और 2 से 4 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 90-95 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता

के साथ 7 महीनों के लिए भण्डारित किया जाता है। 2) प्रसंस्करण के लिए लगभग 3.65 मिलियन टन, (कुल आलू उत्पादन का लगभग 8.00 प्रतिशत) प्राय: 10 से 12 डिग्री सेल्सियस तापमान पर प्रस्फुटन मंदकों के प्रयोग (such as CIPC) के पष्ठचात् 85-90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता में 4 से 6 महीनों के लिए भण्डारित किया जाता है। 3) बाकी खाने के लिए आलू को अधिकतर 2 से 4 डिग्री सेल्सियस पर 90 से 95 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता के साथ या फिर 10 से 12 डिग्री सेल्सियस तापमान पर बाजार की आवश्यकता अनुसार विभिन्न अवधि (4 से 6 महीने) के लिए भण्डारित किया जाता है। 4) फार्म पर ही प्रयोग होने वाले प्रचलित तरीके भी कम अवधि के लिए आलू भण्डारण (2 से 3 महीने) के लिए प्रयोग में किये जाते हैं। यह आलू खाने और प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त होता है जैसा कि उपरोक्त बताया गया है कि भण्डारित आलू खाने, प्रसंस्करण और बीज की पूर्ति करता है।

आलू एक ऐसा कृषि उत्पाद है जिसकी मांग पूरे वर्ष रहती है। इसके साथ-साथ मूलभूत और आवश्यक उत्पाद होने के कारण भारत में उपलब्ध शीतग्रहों का अधिकतर स्थान आलू द्वारा ले लिया जाता है। एक नवीनतम अनुमानुसार भारत में कुल आलू उत्पादन का लगभग 65-70 प्रतिशत खाने के उद्देश्य से उपयोग में लिया जाता है, 7-8 प्रतिशत प्रसंस्करण के लिए, 12-15 प्रतिशत आगामी वर्ष में लगाने हेतु बीज के लिए उपयोग किया जाता है और अतिरिक्त लगभग 8-10 प्रतिशत कटाई उपरांत होने वाली हानि को दर्शाता है। आलू के अल्पकालीन और दीर्घकालीन भण्डारण में एवं जब आलू को भण्डारण से निकाला जाता है तो भी 2-4 प्रतिशत हानियां होती हैं। आलू उत्पादन पद्धति में, बीज के आलू की लागत कुल उत्पादन लागत का 40 से 50 प्रतिशत तक पड़ती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि शीतगृहों में 2 से 4 डिग्री सेल्सियस तापमान पर बीज का आलू लगभग 7 महीने के लिए भण्डारित किया जाता है। भण्डारण की यह दीर्घकालीन अवधि बीज के आलू की अधिक लागत के लिए एक बड़ा कारक है। यह दीर्घकालीन शीत भण्डारण बीज आलू के लिए आवश्यक भी है क्योंकि यह कन्दों की गुणवत्ता, प्राकृतिक सक्रियता और अच्छा ओज जो एक स्वस्थ आलू फसल के लिए आवश्यक है को बनाये रखने में सहायक होता है।

शीत भण्डारण की कुछ प्रमुख कमियां तथा इसे अधिक उपयोगी एवं कारगर बनाने हेतु दिशा निर्देश

भारत के शीत भण्डारण क्षेत्र में कुछ प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं।

1. शीत गृहों की कमी: भारत की वर्तमान शीत भण्डारण क्षमता 31.20 मिलियन टन है जोकि आवश्यक क्षमता 61.13 मिलियन टन से लगभग 30 मिलियन टन कम है।

2. शीत गृहों का देश में असामान्य वितरण: भारत की कुल शीत भण्डारण क्षमता का लगभग 85 प्रतिशत केवल 7 राज्यों में है। उत्तर प्रदेश (2176 यूनिट, 13.633 मिलियन टन), पश्चिम बंगाल (502 यूनिट, 5.901 मिलियन टन), गुजरात (560 यूनिट, 2.073 मिलियन टन), पंजाब (606 यूनिट, 2.005 मिलियन टन), आन्ध्र प्रदेश (404 यूनिट, 1.578 मिलियन टन), बिहार (303 यूनिट, 1.406 मिलियन टन), महाराष्ट्र (540 यूनिट, 0.706 मिलियन टन)।

3. शीत भण्डारण की महंगी दरें: सामान्यत: 50 किलो के एक बैग का प्रति महीना दर लगभग 10 से 15 रूपये तक है।

4. शीत गृहों का अकुशल प्रबंधन: शीत गृहों की आपस में तालमेल का न होना, और ज्यादातर यूनिट का अकेली यूनिट की तरह संचालन होना इनके पूर्णरूप से उपयोग में लाने के रास्ते में प्रमुख रूकावट है।

5. शीत गृहों का तकनीकी दृष्टि से पिछड़ा होना: भारत में अधिकतर यूनिट काफी पुराने हैं और पुरानी तकनीक पर कार्य कर रहे हैं। शीतग्रहों का समय पर

आधुनिकीकरण न होना इनके पिछड़ा रहने का प्रमुख कारण है।

उपरोक्त संदर्भ में हम यह यकीन तौर पर कह सकते हैं कि आज हमें शीत भण्डारण क्षमता बढ़ाने, उसको दुरूस्त करने और आधुनिक बनाने हेतु जल्द से जल्द उपयुक्त निर्णय लेने की जरूरत है।

जहां तक आलू के शीत भण्डारण का प्रश्न है तो इस दिशा में हमें कुछ ऐसे प्रयास भी करने होंगे जिससे हम शीत भण्डारण क्षमता में आलू की प्रमुखता को भी धीरे-धीरे कम कर सके। यह करने से हम अपनी भण्डारण क्षमता को बहुआयामी और विवधीकरण उपयोग कर सकेंगे और ऐसा करना आने वाले भविष्य की जरूरत भी है। इस संबंध में यह कहना उचित है कि पिछले कुछ वर्षों में आलू उत्पादन के लिए वैकल्पिक विधियों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। इन विधियों में बीज आलू, सामान्य आलू जोकि 30 से 125 ग्राम का नहीं होता है, वास्तविक आलू बीज (True potato seeds), बाह्य परिस्थितियों में तैयार अति सूक्ष्म और सूक्ष्म आलू कन्द (Micro and mini potato tubes), छोटे आलू कन्द (Little potato tubes), टैकनीट्यूवर (TECHNITUBER®) और ऐरोपोनिक्स विधि द्वारा छोटे ट्यूबर का उत्पादन करना प्रमुख है। आज जरूरत इस बात की है कि इन वैकल्पिक विधियों का प्रभावी तौर पर कम से कम संभावित सीमा तक और जहां कहीं भी प्रयोगिक तौर पर सुगम और योग्य हो लागू किया जा सके। ऐसा करने से परम्परा आधारित आलू बीज (30-60 ग्राम) पर हमारी निर्भरता में न केवल कमी आएगी अपितु शीत गृहों में आलू की अधिकता जो कि इस परम्परागत आलू बीज के कारण है कम होगी।

इस तरह से भण्डारण जगह की उपलब्धता में इजाफा होगा। यह जगह अब आलू के अतिरिक्त दूसरे उत्पादों के लिए उपयोग में लाया जा सकेगा इसके अलावा, किसानों के द्वारा अपने खेतों पर ही 2 से 4 महीनों के भण्डारण की उचित विधियों का उपयोग भी आलू की शीतग्रहों में अधिकता को कम करने में एक सार्थक कदम होगा क्योंकि यह आलू न केवल खाने के प्रयोग में लाया जा सकता है किन्तु संसाधन (Food processing and value addition) के उपयोग के लिए भी उपयुक्त होता है। इसके आलावा हमें आलू के शीतग्रहों में 2 से 4 महीने के भण्डारण पर जोर देना चाहिए जिससे कि शीतग्रह लम्बे समय तक सिर्फ आलू के भण्डारण के रूप में ही उपयोग में न होकर एक सम्पूर्ण और बहुआयामी रूप से उपयोग में लाए जा सकें।

□□□

बरसात के मौसम में आधुनिक कृषि यंत्रों का रख-रखाव

रणबीर सिंह[1], अनिल कुमार मिश्रा[2] एवं नितिन कुमार भारती[3]

[1,2]जल प्रौद्योगिकी केन्द्र एवं [3]कृषि अभियांत्रिकी संभाग,

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

वर्तमान समय में देश की तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण पोषण एवं खाद्य सुरक्षा के लिए जल, जमीन, जंगल, जन एवं जानवर आदि प्राकृतिक संसाधनों के सरंक्षण हेतु एवं प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक उत्पादन लेने के लिए आधुनिक फसल संसाधन तकनीकियों में आधुनिक उन्नत कृषि यंत्रों एवं मशीनों का प्रयोग करना अति आवश्यक हैं जिससे खेती के समस्त कार्य सफलतापूर्वक, समय पर एवं कम श्रम में आसानी से किये जा सकें, क्योंकि सघन खेती या बहफुसलीय फसल प्रणाली में अधिक फसलें लेना उन्नत कृषि यंत्रों द्वारा ही संभव हैं। आधुनिक खेती में बढ़ते हुए मशीनीकरण से उन्नत कृषि यंत्रों का उपयोग किसानों द्वारा प्रयोग करने से प्रति इकाई क्षेत्र में फसल उत्पादन लागत कम आती है तथा आर्थिक लाभ ज्यादा होता है। वर्तमान कृषि में उन्नत यंत्र एवं मशीनें जैसे: ट्रैक्टर एवं हैरो, कल्टीवेटर, रोटावेटर, पैडी पडलर, लेजर लैंड लेवलर, नो टिल ड्रिल मशीन, रेज्ड बेड प्लान्टर, आलू बुवाई यंत्र, गाजर बुवाई यंत्र, लहसुन बुवाई यंत्र, गन्ना बुवाई यंत्र, स्व-चालित धान रोपाई यंत्र, सब्जियों की पौध रोपाई यंत्र, विभिन्न प्रकार के वीडर, स्पेयर्स एवं डस्टर्स, सिंचाई पम्प, चारा मशीन, रीपर, कम्बाईन, पावर थ्रैसर तथा बिजली एवं डीजल से चलने वालं यंत्र किसानों द्वारा अपनाये जा रहे है जो काफी लागत में आते है अर्थात् काफी पैसों से आते है। इनका रख-रखाव सही से किसानों के हाथों में नहीं रह गया है, जिनकी मरम्मत समय-समय पर स्थानीय बाजारों के कारीगरों के पास जाना पड़ता है, इसलिए आज यह आवश्यक हो गया है कि किसान उपलब्ध कृषि यंत्रों एवं मशीनों को ठीक ढ़ग से रखरखाव एवं प्रयोग करें तथा प्रयोग के उपरान्त या बरसात के मौसम में जब कृषि यंत्र प्रयोग नहीं किये जा रहें है तब किसानों द्वारा उचित देख-रेख नहीं करने पर या लापवाही करने पर यंत्र खराब हो जाते है जिससे किसानों को आर्थिक हानि होती है जिसका किसानों को पता भी नहीं चलता है। बरसात के मौसम में तेज धूप, वर्षा, धूल एवं मिट्टी आदि के कारणों की वजह से कृषि यंत्रों में लोहे पर जंग, लकड़ी का फूल कर कमजोर होना, पेन्ट उतर जाना, चेन-स्प्रोकेट जाम हो जाना आदि कारणों से खराब हो जाती है अत: किसान भाई नीचे दी गई बातों पर ध्यान देकर बरसात के मौसम में उचित देखभाल करके कृषि यंत्रों एवं मशीनों को खराब होने से बचा सकते हैं। जैसे

1. यदि ट्रैक्टर को वर्षा/बरसात के मौसम में काम में लाना है, तो उस किसी साफ शुष्क कमरे या गैरेज में रखे और पहियों में पर्याप्त वायुदाब होना चाहिए एवं पहियों के नीचे लकड़ी के तखतों पर रखें। ट्रैक्टर को स्टोर में रखने से पहले उसकी टंकी से डीजल निकाल लें, फिर टंकी को अच्छी तरह साफ डीजल से धोकर उसके बाद टंकी में 10:1 के अनुपात में डीजल तथा लुब्रीकेशन तेल का मिश्रण डालकर इंजिन का 10 मिनट तक कम गति पर चालू करें, इसके बाद इंजन को बन्द कर दें। एयर

क्लीनर को साफ करके नया तेल भर दें। ट्रैक्टर में लगी बैट्री को खोल कर अलग रख दें। जिस स्थान पर तेल या ग्रीस का निप्पल हो वहाँ पर ग्रीस या तेल डालें तथा साइलेन्सर को ढक दें।

2. कृषि के उन्नत यंत्र एवं मशीनों को कार्य के उपरान्त या समाप्ति के बाद खुली जगह पर न छोड़ें। यदि यंत्र से कार्य नहीं लेना है तो उसे साफ करके छायादार कक्ष या बरामदें में रखें। यदि संभव हो तो कृषि यंत्र के ऊपर त्रिपाल या प्लास्टिक की चादर से ढ़क दें।

3. बरसात के मौसम में बीज एवं उर्वरक बुवाई यंत्र में बचे बीज एवं उर्वरकों के अवशेषों को निकाल कर एवं यंत्र में लगी धूल, मिट्टी के कणों को तेज पानी एवं हवा से सफाई करनी चाहिए तथा फिर सूखे कपड़े से साफ करके, सूखाकर तेल या गीस लगाकर यंत्रों को जमीन की सतह से सुरक्षित स्थान या पहियों के ऊपर भण्डार ग्रहों में रखना चाहिए।

4. कृषि यंत्रों में लगी रबर की बेल्ट, पट्टों आदि को निकाल कर सूखे स्थान पर या खूंटी पर टांग दें। बेल्टों से ग्रीस को साबुन के पानी से साफकर सूखा कर रखें तथा चेन धोकर व सूखा कर हल्के गर्म गाढ़े तेल में डुबाकर रखें।

1. बरसात के मौसम में कृषि यंत्रों को रखने से पूर्व उनमें से निकले हुए नट-बोल्ट, वाशर आदि को लगवा कर उचित मरम्मत करा लें, क्योंकि उस समय कारीगर को अधिक काम रहता है।

2. बरसात के मौसम में कृषि यंत्रों के जंग लगने वाले हिस्सों में कोई जंग प्रतिरोधी लेप, ग्रीस या मोबियल आयल लगा दें।

3. कभी-कभी कृषि यंत्रों से काम करते समय पेन्ट छूट जाता है या जंग लगने से पेन्ट खराब हो जाता है ऐसी दशा में कृषि यंत्रों पर अच्छी तरह पेन्ट करा दें, जिससे कृषि यंत्रों एव मशीनों की आयु बढ़ जाती है।

4. फसल सुरक्षा में प्रयोग किये गये कृषि यंत्रों जैसे छिड़काव यंत्र या स्प्रेयर्स को प्रयोग करने के बाद टंकी में पानी भर कर 5-10 मिनट तक चलायें, उसके बाद उसके नौजल (चुंचू) को खोलकर उसके विभिन्न भागों की सफाई करें। स्पेयर्स को कपड़े से साफ करके पम्प एवं वाशर आदि में तथा डस्टर्स के बुसों में तेल लगायें। डस्टर के फैन बॉक्स, सक्सन पाइप हॉपर एवं एजीटेटर भाग तथा फीड बॉक्स को अच्छी तरह से साफ करके तेल डाल देना चाहिए।

5. सिंचाई के लिए प्रयोग होने वाले लोहे, एल्यूमिनियम या प्लास्टिक के पाइपों को बरसात में खेत से उठाकर साफ करके किसी सुरक्षित स्थान या कमरे में तिरछा करके रखें, जिससे धूल नहीं पहुंचे और खराब नहीं हो पायें।

6. बिजली की मोटर पर पानी न गिरे, इसके लिए मोटर को छाया में रखें। मोटर के तार मेन स्विच तथा जोडों पर पानी का प्रभाव न हो हो अन्यथा बिजली लीक होने से दुर्घटना होने की संभवना हो सकती है। यदि मोटर या बिजली के उपकरण काम में नहीं आ रहे हैं तो उनके मेन स्विच को प्लग से निकाल कर अलग कर दें।

7. जब चारा काटने वाली मशीन को काम में नहीं लाया जा रहा हो तो ऐसी दशा में पहिए को स्टैण्ड के साथ ताला लगाकर रखे जिससे पहिए घूमे नहीं तथा उसके ब्लैडों के ऊपर सुरक्षित कवर लगा दें, जिससे दुर्घटना नहीं हो पाए।

यदि किसान अपने उपलब्ध कृषि के उन्नत यंत्र एवं मशीनों को कृषि कार्यों के उपरान्त या बरसात मौसम शुरू होने से पूर्व उपरोक्त बातों को अपना कर अमल करे तो अपने कृषि यंत्रों की आयु बढ़ा सकते हैं तथा शीघ्र खराब होने से बचा कर काफी वर्षो तक प्रयोग कर सकते हैं। जिससे प्रति वर्ष कृषि यंत्रों के ऊपर होने वाले खर्चो पर लगाम लगा सकते हैं।

□□□

जल संरक्षण

सुरेन्द्र राम[1], अभयदीप गौतम[2] एवं अविनाश वर्मा[3]

[1]विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), [2]विषय विशेषज्ञ (अनुवांशिक एवं पादप प्रजनन) एवं [3]कार्यक्रम सहायक,
कृषि विज्ञान केन्द्र, चन्दौली, नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद, उ.प्र.

हम लोग हमेशा से सुनते आये हैं कि ''जल ही जीवन है''। जल के बिना जीवन की कल्पना करना भी मुश्किल है। जीवन के सभी कार्यों का निष्पादन करने के लिए जल की आवश्यकता होती है। कवि एवं संत रहीम दास जी ने सदियों पहले पानी का महत्व बता दिया था, किन्तु हम आज भी जल संरक्षण के प्रति गम्भीर नहीं हैं।

रहिमन पानी राखिये, बिना पानी सब सून।
पानी गये न उबरे, मोती मानुष चून।।

कैसे बचाएं पानी?

जैसे-जैसे गर्मी बढ़ती है देश के कई हिस्सों में पानी की समस्या विकराल रूप धारण कर लेती है। प्रति वर्ष यह समस्या पहले के मुकाबले और बढ़ती जा रही है, लेकिन हम हमेशा यही सोचते हैं कि जैसे-तैसे गर्मी का मौसम निकल जाए। बारिश आते ही पानी की समस्या दूर हो जायेगी और यह सोचकर जल संरक्षण के प्रति बेरूखी अपनाये रहते हैं। किन्तु आज मानव जाति के लिए जल संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है। यदि अब भी हम लोग जल संरक्षण के प्रति गम्भीर नहीं हुये तो यह बात बिल्कुल सही साबित होगी कि- ''तीसरा विश्व युद्ध पानी के लिए होगा''।

जल संसाधान

जल संसाधान पानी के वह स्रोत होते हैं जो मानव जाति के लिए उपयोगी हैं या जिनके उपयोग में आने की बहुत ही सम्भावना है। पूरे विश्व में पृथ्वी का लगभग तीन-चौथाई भाग जल से घिरा हुआ है, किन्तु इसमें से 97 प्रतिशत पानी खारा है जो पीने योग्य नहीं है, पीने योग्य पानी की मात्र सिर्फ 3 प्रतिशत है। इसमें भी 2 प्रतिशत पानी ग्लेशियर एवं बर्फ के रूप में है। इस प्रकार सही मायने में मात्र 1 प्रतिशत पानी ही मानव के उपयोग हेतु उपलब्धा है।

जल के स्रोतों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं-

1. धारातल के ऊपर से प्राप्त जल

यह जल वर्षा का है जो शुद्ध होता है, किन्तु सतर्कता नहीं रखने पर जमीन पर आते-आते इसमें कई प्रकार की अशुद्धियाँ घुलने का डर रहता है।

2. धारातलीय जल

नदी, तालाब, झील, झरने आदि धारातलीय जल के प्रकार हैं।

3. अन्तः धारातलीय जल

कच्चे तथा पक्के कुएँ, बावड़ी, बोरिंग आदि।

जल संरक्षण की आवश्यकता क्यों है?

जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण के कारण प्रति व्यक्ति के लिए उपलब्धा पेयजल की

मात्रा लगातार कम हो रही है, जिससे उपलब्ध जल संसाधनों पर दबाव बढ़ता जा रहा है। जहाँ एक ओर पानी की मांग लगातार बढ़ती जा रही है वहीं दूसरी ओर प्रदूषण व मिलावट के कारण उपयोग किये जाने वाले जल संसाधानों की गुणवत्ता तेजी से घट रही है। साथ ही साथ भूमिगत जल का स्तर तेजी से गिरता जा रहा है। ऐसी स्थिति में पानी की कमी की पूर्ति करने के लिए आज संरक्षण की नितान्त आवश्यकता है। सम्पूर्ण विश्व में 22 मार्च को **''विश्व जल दिवस''** मनाया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य लोगों को जल संरक्षण के प्रति जागरूक करना होता है।

जल संरक्षण के उपाय

जल संरक्षण आज विश्व की सर्वोपरि प्राथमिकताओं में से एक होनी चाहिए। जल संरक्षण हमें घर में, घर के बाहर, बाग, बगीचों, खेत-खलिहान, हर जगह करना चाहिए।

घरेलू जल संरक्षण

- दाढ़ी बनाते समय, ब्रश करते समय, सिंक में बर्तन धोते समय नल तभी खोलें जब सचमुच पानी की जरूरत हो।
- गाड़ी धोते समय पाइप की बजाय बाल्टी व मग का प्रयोग करें, इससे काफी पानी बचता है।
- नहाते समय शॉवर की बजाय बाल्टी व मग का प्रयोग करें, पानी की बचत होगी।
- वाशिंग मशीन में रोज-रोज थोड़े-थोड़े कपड़े धोने की बजाय कपड़े इकट्ठा होने पर ही धोएं।
- ज्यादा बहाव वाले फ्लश टैंक को कम बहाव वाले फ्लश टैंक में बदलें। सम्भव हो तो दो बटन वाले फ्लश का टैंक खरीदें। यह पेशाब के बाद थोड़ा पानी व शौच के बाद ज्यादा पानी का बहाव देता है।
- जहाँ कहीं भी नल या पाइप लीक करे तो उसे तुरन्त ठीक करवाएं। इसमें काफी पानी को बर्बाद होने से रोका जा सकता है।
- बर्तन धोते समय भी नल को लगातार खोले रहने की बजाय अगर बाल्टी में पानी भरकर काम किया जाए तो काफी पानी बच सकता है।

घर के बाहर जल संरक्षण

- सार्वजनिक पार्क, गली, मुहल्ले, अस्पताल, स्कूलों आदि में जहां कहीं भी नल की टोटियां खराब हो या पाइप से पानी लीक हो रहा हो तो तुरन्त जलदाय कार्यालय में या सम्बन्धित व्यक्ति को सूचना दें, इसमें हजारों लीटर पानी की बर्बादी रोकी जा सकती है।
- बाग-बगीचों में दिन की बजाय रात में पानी देना चाहिए। इससे पानी का वाष्पीकरण नहीं हो पाता और कम पानी से ही सिंचाई हो जाती है।
- सिंचाई क्षेत्र हेतु कृषि के लिए कम लागत की आधुनिक तकनीकों को अपनाना जल संरक्षण हेतु उपयोगी है।

वृक्षारोपण

वृक्ष हमारे अभिन्न मित्र हैं ये हमें छाया, फल एवं लकड़ी प्रदान करते हैं, जमीन का कटाव रोकते हैं, बाढ़ से सुरक्षा करते हैं। जहाँ ज्यादा वृक्ष होते हैं वहां अच्छी बारिश होती है जिससे बारिश में नदी-नाले भर जाते हैं और पानी की कमी नहीं हो पाती है। इसलिये लगातार वृक्षारोपण करते रहना चाहिए।

जल संरक्षण हेतु कानून

कई क्षेत्रों में बिना रोकथाम के पानी निकालने से भूजल के स्तर में भारी गिरावट आ जाती है। इसके लिए भूजल के वितरण प्रबन्धन नियमों का पालन करना जरूरी है। साथ नये कानून बनाने की जरूरत है जो किसी भी प्रकार के जल की बर्बादी को एक गैर-कानूनी काम के रूप में देखें और ऐसा करने वालों को जुर्माना और सजा देने का प्रावधाान करें।

औद्योगिक क्षेत्र में नई तकनीक

पानी की जरूरत को कम करने के लिए, औद्योगिक क्षेत्र, कल-कारखानों आदि में आधुनिक तकनीक को प्रयोग में लेना चाहिए।

वर्षा जल संचयन

हम लोगों की अकेली यह आदत ही जल संरक्षण हेतु मील का पत्थर साबित हो सकती है। एक बारिश के बाद अगली बारिश से छतों से वर्षा जल का संचय करें। यह पानी पीने, कपड़े धोने, बागवानी आदि सभी कार्यों हेतु उत्तम है। इसके लिए गाँव, शहरों में भवन निर्माण सम्बन्धी नियमों में वर्षा जल संचयन को अनिवार्य किया जाना चाहिए तथा लोगों वर्षा जल संचय करने हेतु प्रोत्साहित किए जाने वाले उपाय ढूंढे जाने चाहिए।

जल जागरूकता कार्यक्रम

पानी की बर्बादी रोकने, वर्षा जल का संचयन करने, लगातार वृक्षारोपण करने तथा पानी को प्रदूषण से बचाने हेतु लगातार जागरूकता कार्यक्रम चलाते रहना चाहिए और यह प्रयास हम सबको मिलकर करना चाहिए।

जल अतिप्रवाह (वाटर ओवरफ्लो) अलार्म लगाएं

छत पर लगी टंकियों से पानी गिरकर बर्बाद होना एक आम दृश्य है। हमें इसे रोकना होगा और इसके लिए सबसे सरल उपाय है कि आप अपनी टंकी को एक वाटर ओवरफ्लो अलार्म से जोड़ दें।

लालिमा (फ्लश) के अंदर पानी की बोतल में बालू-कंकड़ भरकर डाल दें

अमूमन फ्लश से जरूरत से अधिक बहता है, इसलिए अगर आप उसमें एक लीटर की बोतल में बालू-कंकड़ आदि भर के डाल देते हैं तो हर फ्लश पर आप एक लीटर पानी बचा सकते हैं, और पूरे वर्ष में हजारों लीटर पानी बचाया जा सकता है। फ्लश से सम्बन्धित इस बात पर भी धयान दें कि कहीं फ्लश का नौब पूरी तरह से न उठने के कारण वो लीक तो नहीं हो रहा है। कई बार इस कारण से रातभर में पूरी टंकी खाली हो जाती है।

जलापूर्ति (वाटर सप्लाई) के पानी को अपना पानी समझें

जो लोग भाग्यशाली हैं उनके घरों में सरकार की तरफ से वाटर सप्लाई का पानी भी आता है देखा गया है कि अक्सर लोग लगभग मुफ्त में मिलने वाले इस पानी को बहुत अधिक बर्बाद करते हैं। वे इसे क्यारी में लगाकर छोड़ देते हैं (बरसात के मौसम में भी), अपने कूलर में पानी भरने के लिए लगाकर भूल जाते हैं या कपड़े की धुलई करने वाली मशीन में लगाकर छोड़ देते हैं और चूँकि ये पानी समय-समय से आता है, इसलिए कई बार लोग टोटियां खुली छोड़कर बाकी काम में व्यस्त हैं और जब पानी आने का समय होता है तो पानी बस यूँ ही गिरता रहता है। इन लापरवाहियों की वजह से वे एक ही दिन में सैकड़ों लीटर पानी बर्बाद कर देते हैं। वहीं दूसरी और वे अपनी टंकियों में भरे पानी को लेकर बहुत सजग होते हैं। यदि आप भी ऐसे लोगों में शामिल हैं तो कृपया ऐसा करना बंद कर दें। पानी तो पानी है, इसमें सरकारी और अपने का भेद नहीं करना चाहिए।

उतना ही पानी लें जितना पीना है

जब आप एक गिलास आर.ओ. पानी पीते हैं तो ध्यान रखिये कि इसे फिल्टर करने की प्रक्रिया में तीन गिलास पानी बर्बाद किया जाता है। इसलिये जब भी आप गिलास में आर.ओ. का पानी लें तो पूरा भरकर लेने की बजाय उतना ही लें जितना पीना है और किसी को यदि देना भी हो तो उसे पानी गिलास में भरकर देने की बजाय जब या पानी की बोतल के साथ गिलास दे सकते हैं। इस तरह से काफी पानी बचाया जा सकता है। यदि आप किसी खाने की दुकान (रेस्टोरेन्ट) में जाते हैं तो सबसे पहले वेटर पानी लाकर रख देता है, तब भी जब आपको उसकी जरूरत न हो। इसलिए जब आप जाइए तो तभी पानी लीजिए जब वाकई में आपको उसकी आवश्यकता हो।

आर.ओ. मशीन या ए.सी. से निकलने वाले बेकार पानी को उपयोग करें

आर.ओ. मशीन द्वारा लिये गये कुल पानी 75 प्रतिशत भाग व्यर्थ हो जाता है। इसलिये कोशिश करिये की मशीन की वास्तु पाइप से जो पानी निकल रहा है उसे बकेट में इकट्ठा कर लिया जाय या पाइप लम्बी करके पौधों को सींचने के काम में लाया जाये। इसी तरह ए. सी. से निकलने वाले पानी को सही तरीके से इस्तेमाल किया जा सकता है।

नलकूप (हैण्डपम्प) का प्रयोग करें

पहले के जमाने में लोग हैण्डपम्प का ही प्रयोग करते थे। इस वजह से पानी की बर्बादी बहुत कम होती थी, जिसको जितनी जरूरत होती थी वो उतना ही पानी निकालता था। पर समय के साथ लोग मोटर से पानी भरने लगे और हैण्डपम्प को भूल गए। यदि आपके यहां नलकूप लगा ही न हो तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर लगा है और बेकार पड़ा है तो उसे ठीक कराकर कभी-कभार प्रयोग करें। अच्छा होगा अगर हम जान-बूझकर हफ्ते का एक दिन सिर्फ नलकूप उपयोग करके पानी निकालें। ऐसा करने से कम से कम एक दिन हम सिर्फ उतना ही पानी निकालेंगे जितने की हमें सचमुच जरूरत है।

सब्जियां-फल किसी बर्तन में धोएं

कई बार लोग सब्जियों और फलों को बहते हुए पानी से धोते हैं, अगर इसकी जगह आप किसी बड़े भगौने या बर्तन में पानी भरकर सब्जियां धाोएंगे तो पानी भी कम लगेगा और वो ठीक से साफ भी हो जाएगी।

वॉश बेसिन का बहाव (फ्लो) कम कर दें

वॉश बेसिन के नीचे भी पानी नियंत्रित करने के लिए एक टोटी लगी होती है, अक्सर वो पूरी खुली होती है। अगर आप उसे थोड़ा सा घुमा दें तो पानी का बहाव अपने आप कुछ कम हो जाएगा और काफी पानी बर्बाद होने से बच जाएगा।

बाथरूम में एक-आध बाल्टी अतिरिक्त रखें

अक्सर गर्मियों के दिनों में टंकी का पानी बहुत गर्म हो जाता है और लोग नहाते समय पहले कुछ पानी गिरा देते हैं कि उसके बाद ठंडा पानी आने लगे। ऐसा करना पड़े तो पानी गिराने की बजाय किसी बाल्टी में भरकर रख लें और बेहतर तो यह होगा कि सुबह के समय ही आप बाल्टियों में पानी भरकर रख लें, ताकि नहाते वक्त आपको ठंडा पानी मिल सके।

प्लम्बर का हल्का-फुल्का काम खुद सीखें

अक्सर देखा जाता है कि घर में मौजूद पानी के टैप्स टपकते रहते हैं और हम उसे यूँ ही नजरअंदाज करते रहते हैं क्योंकि हम आलस्य में प्लम्बर को बुलाते नहीं या ये सोचते हैं कि अगर प्लम्बर को बुलाएंगे तो वो अनाप-शनाप पैसे मांगेगा और हम खुद उसे ठीक करने की हिम्मत नहीं दिखाते। लेकिन अगर हम पाइप लाइन के बेसिक सामान घर पर रखें और खुद ही छोटी-मोटी चीजें ठीक करना सीख लें तो हम बहुत सारा पानी बर्बाद होने से रोक सकते हैं। मेरी तो यही सलाह है कि हमें स्कूलों में बच्चों को पाइप लाइन से सम्बन्धित बेसिक काम जरूर सिखाने चाहिए।

जो भी पानी बर्बाद करता है उसे रोकें

जो भी व्यक्ति पानी बर्बाद करता है उसे रोकना चाहिए, क्योंकि पानी की बर्बादी सिर्फ उसे बर्बाद करने वाले को ही नहीं बल्कि पूरे समाज को प्रभावित करती है। अगर आपका पड़ोसी पानी बर्बाद करता है तो आपका भी जलस्तर कम होता है इसलिए अनमोल संसाधान को न बर्बाद करिए और न बर्बाद करने दीजिए।

□□□

एक किसान की सफलता की कहानी

एन. वी. कुंभारे एवं नफीस अहमद
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

श्री रघुपत सिंह, पिता स्व. श्री सीताराम, गांव: समाथल, तहसील बिलारी, जिला मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश के मंझोले प्रगतशील किसान हैं। 73 वर्षिय श्री सिंह ने एम.ए. (भूगोल) तक पढाई की हैं और इनके पास 1.5 हेक्टेयर खुद की जमीन हैं। इन्होने राजमा की सात प्रजातियाँ विकसित की हैं। साथ ही अपने स्तर पर चना, नींबू, बैंगन, लौकी, करेला, भिंडी, काशीफल के बीजों का शोधन और अनेक उन्नतशील प्रजातियों का विकास किया हैं। श्री रघुपत सिंह ने लौकी की ऐसी प्रजाति तैयार की है जिसकी लंबाई डेढ़ मीटर तक है, जिसे विभिन्न प्रदर्शनियों और मेलों में भरपूर सराहना और पुरस्कार मिला। इन्होने अरबी की देसी एवं गुच्छेदार

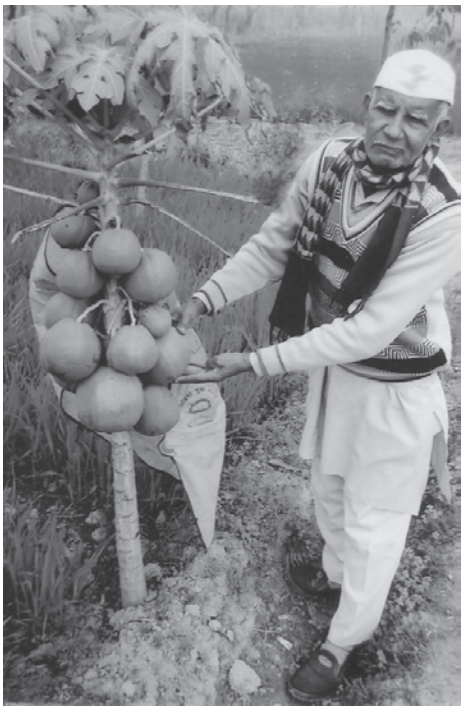

प्रजाति एकत्र की एवं उन्हें उगाने का तरीका विकसित किया। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि यह पेड़ों की छाया में अच्छी तरह उत्पादन किया जा सकता है। इस प्रजाति को पक जाने पर एक साथ ही खुदाई कर सकते हैं। यह गुच्छो में होती है और हारवेस्टिंग के बाद ज्यादा समय तक रख सकते हैं। हारवेस्टिंग एक बार होने पर दूसरी फसल समय से लगा सकते हैं। इस प्रजाति की एक अन्य विशेषता यह है कि इसको हारवेस्टिंग के बाद ली गई दूसरी फसल अधिक उपज देती है। अत: इसके लगाने से मिट्टी में पोषण तत्व बने रहते हैं। इसमें रोग प्रतिरोधी क्षमता होती है। अधिक गर्मी एवं वर्षा को भी सहन करने की क्षमता है। इन्होने देसी सब्जियों की प्रजातियों का संरक्षण एवं संकलन किया, जिसमें प्रमुखता से लौकी, तोरई, करेला, काशीफल आदि हैं। श्री सिंह जैविक पद्धति से वैज्ञानिक विधि द्वारा सब्जी उत्पादन करके अधिक लाभ कमा रहे हैं।

पारंपरिक ज्ञान का सत्यापन: श्री रघुपत सिंह ने प्राकृतिक घटना, विशेषकर बारिश के पूर्वानुमान के लिए पूर्वजों द्वारा सीखी गई विधि को सत्यापित किया। इसके अंतर्गत रात में आसमान में तारों और आकाशगंगा की स्थिति देखकर इसका सटीक पूर्वानुमान लगाया जाता है। फसल को शुक्ल् पक्ष में बुआई से कीड़े कम लगेंगे, को सत्यापित किया। बीजों को सुखाकर गाय के उपलों से बनी राख में मिलाकर रखने पर बीज लंबे समय तक स्वस्थ रहते हैं और उनकी अंकुरण क्षमता अच्छी बनी रहती है। गोमूत्र, धतूरा, नीम, सदासुहागिन, हरीमिर्च, गुड़ और तंबाकू के मिश्रण से जैविक कीट-रोगनाशक नुस्खा

तैयार करके, उसका सफलतापूर्वक प्रयोग करते हैं। जंगली पशुओं और अन्य रोगों से बचाने के लिए राख और मिट्टी का भुरकाव, और गोमूत्र का स्प्रे सफलतापूर्वक करते हैं।

श्री रघुपत सिंह ने पूसा संस्थान की धान की किस्में पूसा बासमती 1509, पूसा 1121, पूसा 1612 आदि और गेहूं की किस्में एच.डी. 2967, एच.डी. 3086 आदि को अपनाया। इन्होने गमले में सब्जी की खेती उगाने की तकनीकी में नए-नए प्रयोग किए। जिसे देखते हुए भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी ने जनवरी 2016 में स्वर्ण पदक से नवाजा। श्री सिंह, देसी सब्जियों, जैसे लौकी, तोरई, करेला, काशीफल, लोबिया, राजमा आदि का बीज उत्पादन करते हैं तथा उन बीजों को अपने साथी किसानों को बाँटते हैं। श्री रघुपतजी ने औषधीय पौधों की खेती प्रारंभ की जिसमे मेंथा, स्टीविया, कालमेघ, ईसबगोल, कलोंजी, अश्वगंधा, सर्पगंधा, आम अदरक, जिमीकंद, अरबी, पपीता, कद्दू, सौंफ आदी हैं। इनकी सुनिश्चित मार्केटिंग की व्यवस्था संभल, बदायूँ, चंदौसी आदि में होने के कारण इन्हें अच्छा मूल्य मिल जाता है। इसके अतिरिक्त औषधीय एवं सब्जियों की विभिन्न प्रजातियों को अपने गांवों एवं दूसरे गांवों के किसानों के बीच प्रचारित एवं प्रसारित किया जिससे अनेक किसानों ने अपनाया और लाभ उठा रहे हैं। इन्होने अपने द्वारा विकसित प्रजातियों का बीज वितरित कर लगभग 5000 किसानों को अपने सब्जी उत्पादन एवं सब्जी बीज उत्पादिन अभियान में जोड़ चुके हैं। श्री रघुपतजी ने औषधीय एवं सब्जियों की विभिन्न प्रजातियों को अपने गांवों एवं दूसरे गांवों के किसानों के बीच प्रचारित एवं प्रसारित किया जिससे अनेक किसानों ने अपनाया और लाभ उठा रहे हैं। श्री रघुपतजी गत तीस वर्ष से आकाशवाणी रामपुर के उद्घोषक हैं, साथ ही आकाशवाणी के कृषि कार्यक्रम सलाहकार मंडल के सदस्य भी हैं और नियमित बैठकों में भाग लेकर अपना योगदान देते हैं। इन्होने मंझोले किसानों के लिए समेकित मॉडल बनाया जिससे मंझोले किसान अपने संसाधनों का दक्षतापूर्ण इस्तेमाल करके वर्ष भर खेती कर अधिक लाभ कमा सकते हैं। श्री रघुपतजी स्थानीय कृषि विभाग से हमेशा जुडे रहे हैं, और कृषि मेलों, प्रदर्शनियों में भाग लेते हैं। साथ ही साथी कृषकों को भी इन कार्यक्रमों में जोड़ने और नए-नए ज्ञान को अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। इसीलिए गुजरात सरकार ने वर्ष 2013 में ग्लोबल कृषि समिट के दौरान ₹ 51,000 के पुरस्कार से सम्मानित किया। श्री रघुपतजी अपने जिले मुरादाबाद की आत्मा संस्था के, उ.प्र. के राज्य स्तर पर औद्यानिक मिशन बोर्ड, औषधीय मिशन बोर्ड के जिला स्तर की कमेटी के सदस्य् हैं। साथ ही उ.प्र. के मंडल एवं राज्यस्तर पर कृषि उत्पादन समिति (ए.पी.सी.) की बैठकों में सन 1995 से सदस्य हैं और सभी बैठकों में भाग लेते हैं और सलाहकार के तौर पर अपना योगदान देते हैं। श्री रघुपतजी कृषि विज्ञान केंद्र, बेलारी, मुरादाबाद के सैक कमेटी के सलाहकार सदस्य भी हैं। इन्होने अपने प्रक्षेत्र में कृषि विभाग की ओर से प्रायोजित किसानों एवं आकाशवाणी के कार्यक्रम द्वारा प्रेरित जिज्ञासु किसानों को अपने खेतों पर बीज उत्पादन का लगभग 100 प्रशिक्षण दिया, प्रशिक्षणार्थियों को नि:शुल्क बीज प्रदान किया और उन्नत खेती हेतु प्रेरित भी किया। श्री रघुपतजी की सफलता की लगभग 100 कहानियाँ विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई हैं।

श्री रघुपत सिंह जी को कृषि मे उनके उल्लेखनीय कार्य के लिये जिला स्तर पर कृषि विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा कृषि पंडित की उपाधि, एकीकृत बागवानी विकास मिशन के अंतर्गत 2016 में औद्योनिक फसलों में सराहनीय कार्य के लिए सम्मानित किया गया एवं अनेक प्रगतिशील कृषक पुरस्कार से सम्मानित किया है जिसमे भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2016 को नवोन्मेषी कृषक पुरस्कार तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का वर्ष 2017 का श्री एन.जी. रंगा किसान पुरस्कार प्रमुख हैं।

□□□

लेखकों से...

1. अपनी तकनीकी या अनुसंधान की जानकारी स्वच्छ एवं पठनीय साधारण हिन्दी में हाथ से लिखकर या टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क रु. 80/- मनिआर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली - 110012

फोनः 011-25841670, 25846233, 25841039

पूसा एग्रीकॉम : 1800 11 8989 (निःशुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012 द्वारा प्रकाशित तथा

मैसर्स वीनस प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स बी-62/8, नारायणा इन्डुस्ट्रियल एरिया, फेस-2, नई दिल्ली-110028 द्वारा मुद्रित

फोनः 45576780 मोबाईलः 9810089097